भगवान श्री रजनीश की अनंत आनंद और रहस्य की,
परमात्म प्रकाश से आपूरित वाणी को मानव हृदय
तक पहुंचाने वाली पत्र-पत्रिकायें :—

योगदीप

पाक्षिक (मराठी भाषा में)

संपादक : श्री गोपीनाथ तलवलकर, मा आनंद वंदना

वार्षिक शुल्क : ५ रु०

प्रकाशक : श्री माणिकचंद जी बाफना
१०१, टिम्बर मार्केट, जीवन जागृति केन्द्र, पूना (फोन : २४१४८)

ओम्

साप्ताहिक (गुजराती भाषा में)

संपादक एवं प्रकाशक : स्वामी रोहित सिद्धार्थ,
रोहित क्षेम, डा० रतनशी जैराज एस्टेट,
महात्मा गांधी रोड, मुलुन्द, बंबई-८०

वार्षिक शुल्क : १२ रु०, अर्ध वार्षिक ६ रु०

English Bi-Monthly :

SANNYAS

(A divine Magazine For Present Day)
Annual Subscription Rs. 18/-
Publisher : JEEVAN JAGRUTI KENDRA
31, Israil Mohalla, Bhagwan Bhuvan, Masjid
Bunder Road, Bombay : 9
PHONE : 327618

भगवान श्री रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

मार्च १९७२

युक्रांद

वर्ष – ३ अंक – १७ : १८

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
,, वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द

मार्च

१६७२

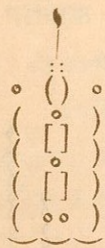

मानसेवी—

सम्पादक :

अरविन्द कुमार

उप-सम्पादक :

आलोक पाण्डे

'आकुल' राजेन्द्र

सौज० सम्पादक :

कनु शेठ

व्यवस्थापक :

स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

पृष्ठ :

१. **कण-कण अमृत** — अमृत वचन

२. **जीवन-रहस्य** — बोध कथाओं से

३. **'जीवन ही है प्रभु' ध्यान पर—** (पंचम प्रवचन) — संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़

२६. **अमृत-पत्र**

४३. **पंच नमोकार** (महावीर वाणी के अंतर्गत एक प्रवचन) — संकलन : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

गीत : काव्य

२८. **इशारा हो गया** — स्वामी दयाल भारती, जबलपुर

६४. **क्षण-क्षण निकट भगवान मेरा** — 'आकुल' राजेन्द्र

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट–टाउन, जबलपुर.

मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर.

कण कण अमृत

- सत्य को पाने के लिए स्वयं को खोने का सूत्र सीखो. स्वयं को खोये बिना सत्य नहीं पाया जा सकता; क्योंकि स्वयं का होना बीज की भांति है और बीज जब मिटता है, तभी सत्य का अंकुर जन्मता है. जीवन के लिए मरना सीखना होता है.

- पाप क्या है ? स्वयं के ईश्वरत्व से अस्वीकार. स्मरण रहे कि स्वयं की दिव्यता की स्मृति के अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं है.

- ईश्वर को खोजना व्यर्थ है. उचित है कि उसे जिओ. जीवन में उसे प्रगट करो. जो उसे श्वास-श्वास की भांति जीता है, वही उसे पाता है.

- मृत्यु को जीतना है तो मृत्यु से गुजरना पड़ता है. मन के प्रति जो मर जाता है, वह मृत्यु को जीत, अमृत को पा लेता है.

- अंधकार भीतर है तो बाहर का कोई प्रकाश, प्रकाश नहीं है.

जीवन-रहस्य

(भगवान श्री की बोध कथाओं से)

जीवन क्या है ? जीवन के रहस्य में प्रवेश करो. मात्र जी लेने से जीवन चुक जाता है, लेकिन ज्ञात नहीं होता. अपनी शक्तियों को उसे जी लेने में ही नहीं, ज्ञात करने में लगाओ. और जो उसे ज्ञात कर लेता है, वही वस्तुतः उसे ठीक से जी भी पाता है.

०

रात्रि कुछ अपरिचित व्यक्ति आये थे. उनकी कुछ समस्यायें थीं. मैंने उनकी उलझन पूछी. उनमें से एक व्यक्ति बोला : "मृत्यु क्या है ?" मैं थोड़ा हैरान हुआ क्योंकि समस्या जीवन की होती है. मृत्यु की कैसी समस्या ? फिर, मैंने उन्हें कन्फ्यूसियस से ची—लु की हुई बातचीत बताई. ची—लु ने कन्फ्यूसियस से मृत्यु के पूर्व पूछा था कि मृतात्माओं का आदर और सेवा कैसे करनी चाहिए ? कन्फ्यूसियस ने कहा : "जब तुम जीवित मनुष्यों की ही सेवा नहीं कर सकते तो मृतात्माओं की क्या कर सकोगे ?" तब ची—लु ने पूछा : "क्या मैं मृत्यु के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ पूछ सकता हूं ?" वृद्ध और मृत्यु के द्वार पर खड़ा कन्फ्यूसियस बोला : "जब जीवन को ही अभी तुम नहीं जानते, तब मृत्यु को कैसे जान सकते हो ?" यह उत्तर बहुत अर्थपूर्ण है. जीवन को जो जान लेते हैं, वे ही केवल मृत्यु को जान पाते हैं. जीवन का रहस्य जिन्हें ज्ञात हो जाता है, उन्हें मृत्यु भी रहस्य नहीं रह जाती है क्योंकि वह तो उसी सिक्के का दूसरा पहलू है.

०

मृत्यु से भयभीत केवल वे ही होते हैं जो कि जीवन को नहीं जानते. मृत्यु का भय जिसका चला गया हो, जानना कि वह जीवन से परिचित हुआ है. मृत्यु के समय ही ज्ञात होता है कि व्यक्ति जीवन को जानता था या नहीं ? स्वयं में देखना : वहां यदि मृत्यु भय हो तो समझना कि अभी जीवन को जानना शेष है.

'जीवन ही है प्रभु'

जूनागढ़ साधना-शिविर में भगवान श्री द्वारा दिया गया पंचम प्रवचन--ध्यान पर

संकलन : मा योग मीरा, जूनागढ़

ध्यान का अर्थ है समर्पण. ध्यान का अर्थ है, अपने को पूरी तरह छोड़ देना परमात्मा के हाथों में. ध्यान कोई क्रिया नहीं है, जो आपको करनी है; ध्यान का अर्थ है—कुछ भी नहीं करना है और छोड़ देना है उसके हाथों में, जो कि सचमुच ही हमें सम्हाले हुए हैं. जैसा मैंने कल रात कहा, परमात्मा का अर्थ है— मूल स्रोत, जिससे हम आते हैं और जिसमें हम लौट जाते हैं. लेकिन न तो आना हमारे हाथ में है और न लौटना हमारे हाथ में है. हमें पता नहीं चलता, कब हम आते हैं और कब लौट जाते हैं. ध्यान जानते हुए लौटने का नाम है. जब आदमी मरता है तो बिना चाहे बिना जाने लौट जाता है. ध्यान जानते हुए अपने को उस मूल स्रोत में खो देना है, ताकि हम जान सकें कि वो क्या है और यह भी जान सकें कि हम क्या हैं. तो ध्यान के लिये पहली बात तो स्मरण रखना— समर्पण, 'सरेन्डर, टोटल सरेन्डर'. सच तो यह है कि अधूरा समर्पण हो ही नहीं सकता है. ऐसा नहीं हो सकता कि आधा तो हम परमात्मा के हाथों में छोड़ दें और आधा अपने हाथों में रखें. छोड़ेंगे तो पूरा छोड़ेंगे, नहीं छोड़ेंगे तो बिलकुल नहीं छोड़ पायेंगे. अंग्रेजी में एक शब्द है, 'लेट गो' सब कुछ छोड़ देना. अगर एक क्षण को भी हम सब छोड़ पायें तो सब हमें मिल जाय, इसकी पात्रता उपलब्ध हो जाती है. पूरी तरह अपने को छोड़ देने का नाम ध्यान है. जिसने अपने को थोड़ा भी पकड़ा वह ध्यान में नहीं जा सकेगा; क्योंकि अपने को पकड़ना यानी रुक जाना अपने तक और छोड़ देना यानी पहुंच जाना उस तक, जहां छोड़कर हम पहुंच ही जाते हैं. इस समर्पण की बात को समझने के लिए हम तीन छोटे-छोटे प्रयोग करेंगे, ताकि यह समर्पण की बात पूरी समझ में आ जाय. समर्पण को भी समझने के लिए सिर्फ समझ लेना जरूरी नहीं है, करना जरूरी है, ताकि हमें ख्याल में आ सके कि क्या अर्थ हुआ समर्पण का.

ध्यान विलीन होने की क्रिया है—अपने को खोने की, उसमें जो हमारा मूल स्रोत है. जैसे कोई बीज टूट जाता है और वृक्ष हो जाता है,

ऐसे ही जब कोई मनुष्य टूटने की हिम्मत जुटा लेता है, तो परमात्मा हो जाता है. मनुष्य बीज है, परमात्मा वृक्ष है. हम टूटें तो ही वह हो सकता है. जैसे कोई नदी सागर में खो जाती है. लेकिन नदी सागर में खोने से इंकार कर दे, तो फिर नदी ही रह जाती है. और सागर में खोने से इन्कार कर दे, तो नदी भी नहीं रह जाती, तालाब हो जाती है, बंधा हुआ डबरा हो जाती है. क्योंकि जो सागर में खोने से इंकार करेगा, उसे बहने से भी इन्कार करना होगा. क्योंकि सब बहा हुआ अंततः सागर में पहुंच जाता है, सिर्फ रुका हुआ नहीं पहुंचता है. डबरे सिर्फ सूखते हैं और सड़ते हैं. सागर का महाजीवन उन्हें नहीं मिल पाता . हम सब भी डबरों की तरह हो जाते हैं; क्योंकि हम सबकी वह जीवन सरितायें परमात्मा के सागर की तरफ नहीं बहती हैं. और बह केवल वही सकता है, जो अपने से विराट में लीन होने को तैयार है. जो डरेगा लीन होने से, वह रुक जायगा, ठहर जायगा, जम जायगा, बहना बंद हो जायगा. जिंदगी बहाव है रोज और महान से महान की तरफ. जिंदगी यात्रा है और—और विराट की मंजिल की तरफ. लेकिन हम सब रास्तों पर रुक गये हैं, मील के पत्थरों पर. ध्यान इन बहावों को वापिस पैदा कर लेने की आकांक्षा है. यह बड़ा उल्टा है, वर्षा होती है पहाड़ों पर, तो बड़े-बड़े शिखर खाली रह जाते हैं; क्योंकि वे पहले से ही भरे हुए हैं और खड्ड और खाइयां भर जाती हैं, झीलें भर जाती हैं; क्योंकि वे खाली हैं. जो भरा है वह खाली रह जायगा, जो खाली है वह भर जायगा. परमात्मा की वर्षा तो प्रतिपल हो रही है. सब तरफ वही बरस रहा है. लेकिन हम अपने भीतर भरे हुए हैं तो खाली रह जाते हैं. काश ! हम भीतर गड्ढों की तरह खाली हो जायं तो परमात्मा हम में भर सकता है. हम तब उसके भराव को उपलब्ध हो सकते हैं, 'फुलफिलमेन्ट' को उपलब्ध हो सकते हैं. यह बहुत उल्टा है, लेकिन यही सही है. जो भरे हैं वे खाली रह जायंगे और जो खाली हैं वे भर जाते हैं. इसलिए ध्यान का दूसरा अर्थ है, खाली हो जाना, 'एम्प्टी' हो जाना बिलकुल खाली हो जाना है, कुछ भी नहीं बचाना है. मिटने का, समर्पण का, खाली होने का सबका एक ही अर्थ है.

ध्यान की आधार शिला अक्रिया है, क्रिया नहीं है. लेकिन शब्द ध्यान से लगता है कि कोई क्रिया करनी होगी. जबकि जब तक हम कुछ करते हैं, तब तक ध्यान में न हो सकेंगे. जब हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं तब जो होता है, वही ध्यान है. ध्यान हमारा न करना है. लेकिन मनुष्य जाति को एक बड़ा गहरा भ्रम है कि हम कुछ करेंगे तो ही होगा. हम कुछ न करेंगे तो कुछ न होगा .

बीज को कुछ करना नहीं पड़ता टूटने के लिए, अंकुर बनने के लिए और बीज को कुछ करना नहीं पड़ता, फूल बन जाने के लिए; होता है. हम भी बच्चे से जवान हो जाते हैं, कुछ करना नहीं पड़ता है. जन्म होता है, जीवन होता है, मृत्यु होती है, हमारे करने से नहीं; होता है. जीवन में बहुत कुछ है, जो हो रहा है अपने से. और अगर हम कुछ करेंगे तो बाधा पड़ेगी होने में—गति नहीं आयेगी. खाना आपने खा लिया है, फिर वो पचता है, पचाना नहीं पड़ता आपको. और अगर आपको ख्याल भी आ जाय कि मुझे पचाना है खाना, तो आप बड़ी कठिनाई में पड़ जायेंगे और पाचन में बाधा पड़ जायगी. न हो तो कभी प्रयोग करके देखें. खाना खाने के बाद ख्याल रखें कि भोजन पेट में पच रहा है. आप पायेंगे चौबीस घंटे बाद कि भोजन नहीं पच पाया. जो रोज पचता था, उसमें बाधा पड़ गयी. कभी कोशिश करके सोकर देखें. प्रयास करें सोने का तो फिर पायेंगे कि नींद आनी मुश्किल हो गई. नींद आती है, लानी नहीं पड़ती है. यह समझ लेना जरूरी है कि जीवन में बहुत कुछ है, जो अपने से होता है, हमें नहीं करना होता. और यदि हम करते हैं तो उल्टे बाधा ही पड़ती है—सहयोग नहीं मिलता है.

ध्यान भी उन्हीं दिशाओं में से एक है, जहां हम जा सकते हैं, लेकिन अपने को ले जा नहीं सकते—जहां हमारा विकास हो सकता है, लेकिन हम अपने को धक्का देकर विकास नहीं करवा सकते. यह बात बहुत स्पष्ट रूप से मन के सामने प्रगट हो जानी चाहिए कि ध्यान हमारी कोई क्रिया नहीं है, ध्यान हमारा समर्पण है. लेकिन हमारी भाषा में बड़ी भूल हो जाती है, समर्पण भी एक क्रिया है. असल में जिंदगी और भाषा में कुछ बुनियादी भेद हैं, और धीरे-धीरे हम भाषा के इतने आदी हो जाते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि जिंदगी कुछ बात और है. हिन्दुस्तान का नक्शा हिन्दुस्तान नहीं है और न घोड़ा शब्द घोड़ा है. घोड़ा शब्द तो लिखा है शब्द-कोष में और घोड़ा बंधा है अस्तबल में. वो दोनों में बड़ा भेद है. शब्द प्रत्येक चीज को जो शक्ल दे देते हैं, हम अगर जिंदगी में भी जो उसको खोजने गये तो बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे.

अब जैसे प्रेम करना एक क्रिया है शब्दों की दुनिया में; लेकिन जीवन में प्रेम किया ही नहीं जा सकता, होता है. वहां वो क्रिया नहीं है; वहां वो घटना है—'हेपनिंग' है. वहां कोई मनुष्य प्रेम में पड़ जाता है, कर नहीं सकता प्रेम. और अगर आपसे कहा जाय कि फलां व्यक्ति को प्रेम करो, तो ज्यादा से ज्यादा आप प्रेम का अभिनय कर सकते हैं; प्रेम नहीं कर सकते हैं. अगर चेष्टा की प्रेम करने की, तो आप खुद ही भीतर पायेंगे कि

भीतर तो प्रेम नहीं है. चेष्टा से प्रेम असम्भव है. मां बेटे को प्रेम नहीं करती; मां का बेटे से प्रेम होता है. और प्रेमी भी प्रेयसी को प्रेम नहीं करता है; प्रेम होता है. लेकिन भाषा में प्रेम किया है और जीवन में प्रेम एक घटना है. ऐसे हां ध्यान किताब में पढ़ेंगे तो लगेगा करना पड़ेगा. और अगर ध्यान को समझने जायंगे तो पता चलेगा करना नहीं है. करना नहीं है, करना हो तो आसान भी मालूम पड़ता है. न करना बहुत कठिन मालूम पड़ता है.

तो फिर क्या किया जाय ? मैंने यह मुट्ठी बांध ली,तो मुट्ठी बांधना एक क्रिया है. बांधने के लिए मुझे कुछ करना पड़ रहा है. फिर मैं किसी के पास जाऊं और पूछूं कि मुझे मुट्ठी खोलनी है, अब मैं क्या करूं ? बांधना एक क्रिया है भाषा में, खोलना भी एक क्रिया है भाषा में; लेकिन जिन्दगी के तथ्यों में बांधना तो क्रिया है, खोलना क्रिया नहीं है. खोलने के लिए कुछ भी करना नहीं पड़ेगा. सिर्फ मैं बांधूंगा तो मुट्ठी खुल जायगी— मुट्ठी का खुलना अपने से हो जायगा. बांधना पड़ता है हमें, खुलना अपने से हो जाता है. अशांत होना क्रिया है, शांत होना क्रिया नहीं है. अशांत होने के लिए हमें बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, बड़ा श्रम करना पड़ता है. और अशांति में सफल होने के लिये बड़ी कुशलता चाहिए; लेकिन शांत होना क्रिया नहीं है. अगर हम अशांत होना बंद कर दें, तो बस शांत होना हो जायगा. इसको ऐसा भी समझ सकते हैं कि अशांति और शांति में विरोध नहीं है. अशांति का अभाव—'एबसेन्स'—शांति है. हमारी जो पकड़ है करने की, उसे पहले समझ कर छोड़ देना चाहिए. ध्यान हम करेंगे नहीं, ध्यान में हम होंगे. ध्यान में हम जायेंगे, ध्यान में हम बहेंगे, तैरेंगे नहीं. तैरना क्रिया है, बहना क्रिया नहीं है, बहना एक घटना है. उसमें हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता हैं. और इसलिए मजे की बात है, जिन्दा आदमी नदी में डूब जाय, मरे हुए आदमी को कभी डूबते हुए नहीं देखा गया; बल्कि जिन्दा आदमी भी डूब जाय तो मरते ही ऊपर आ जाता है वापिस. नदी भी बड़ी गजब का काम करती है ! जिन्दा को डुबा देती है, मुर्दे को उठा देती है ! जिन्दा को मार डालती है और मुर्दे को ऊपर तैरा देती है. आखिर मुर्दे में ऐसी कौनसी कला है कि वो ऊपर आ जाता है और जिन्दा नीचे चला जाता है ? मुर्दे के पास एक कला है जो जिन्दा के पास नहीं है. मुर्दा तैर नहीं सकता, वो तैरने में असमर्थ है. तैरने का उपाय ही नहीं है, मुर्दा सिर्फ बह सकता है. जो तैरता नहीं, वो नदी के ऊपर आ जाता है और जो तैरता है, वह नीचे चला जाता है. बात क्या है ? तैरने में शक्ति का व्यय होता है—तैरने में नदी से लड़ना पड़ता है. नदी बहुत बड़ी है. और जीवन की नदी तो बहुत बड़ी है, उससे अगर हम लड़ेंगे तो डूबेंगे ही, मरेंगे ही; क्योंकि लड़ने में शक्ति नष्ट

होगी. मुर्दा लड़ता ही नहीं, वह नदी के साथ एक हो जाता है. वह कहता है नदी से, जहां ले चलो वहीं चलने को राजी हैं, डुबाओ तो डूबने को राजी हैं, उठाओ तो उठने को राजी हैं. किनारे फेंक दो, तो जिस किनारे फेंक दो वही हमारी मंजिल है. कहीं हमें जाना नहीं हैं और ले चलो साथ तो साथ चलने को राजी हैं. मुर्दा कहता है कि हम अलग नहीं, तुम्हारे साथ हैं. फिर नदी मुश्किल में पड़ जाती है. मुर्दे को नदी हरा नहीं पाती है. मुर्दा नदी से ज्यादा ताक़तवर सिद्ध होता है. मुर्दा मरा हुआ है और जिन्दा आदमी लड़ता है, इसलिए कमजोर हो जाता है. 'रेज़िस्ट' करता है, विरोध करता है, इस-लिए टूट जाता है. ध्यान—मुर्दे आदमी की भांति हो जाने का नाम है. हम कुछ भी नहीं करते हैं, हम जीवन के प्रवाह में छोड़ देते हैं अपने को. जो हो, हो. इस स्थिति को समझने के लिए पहले हम तीन छोटे प्रयोग करेंगे. इस ध्यान की, मिटने की, स्थिति को समझने के लिए, वे तीन प्रयोग ध्यान की सीढ़ियां हैं. और अगर वे तीन हमें ठीक से समझ में आ जायं तो ध्यान बहुत आसान है. लेकिन अगर वे तीन हमारी समझ में न आयें तो फिर ध्यान बहुत मुश्किल हो जायगा.

कल एक मित्र ने आकर कहा कि सूखा पत्ता सोच ही नहीं पाता कि वह नदी में बह रहा है, तो हम सोच ही नहीं पाते अपने को सूखे पत्ते की तरह. तो मैंने कहा—"अच्छा है, मुर्दे की तरह सोचें. एक मुर्दा लाश बह रही है." और सूखे पत्ते में और मुर्दे में फर्क नहीं है. सूखा पत्ता हरे पत्ते की लाश है और मुर्दा हमारी लाश है. इसमें कोई बहुत फर्क नहीं है. हरा पत्ता जिन्दा है और सूखा पत्ता मर गया है. वो भी लाश है हरे पत्ते की. हरा पत्ता लड़ता है हवाओं से. हवायें पूरब जाती हैं तो हरा पत्ता कहता है, नहीं जायेंगे. हवायें पश्चिम जाती हैं तो हरा पत्ता कहता है, अपनी जगह रहेंगे. इसलिये तो हरे पत्ते से गुजरती हवा में शोर-गुल हो जाता है; क्योंकि पत्ते लड़ाई करते हैं. सूखा पत्ता कहता है—"जहां ले चलो, जो मरजी, वहीं राजी हैं." सूखा पत्ता—पूरब ले जाती हवा, पूरब चला जाता, पश्चिम ले जाती तो पश्चिम चला जाता है. सूखा पत्ता विरोध नहीं करता है. ध्यान अविरोध है, 'नॉन रेज़िसटेंस' है. जब मैं कहूं, बहना तो आपको भीतर प्रतीति हो जानी चाहिये कि बहने का क्या मतलब है. एक दफे प्रतीति हो जाय फिर तो शब्द भी काम करता है. जैसे मैं आपसे कहूं कि नीबू और आप थोड़ी देर नीबू को सोचें तो आप पायेंगे, मुंह में पानी आना शुरू हो गया . अभी नीबू तो नहीं है, लेकिन नीबू का शब्द भी मुंह में पानी ला सकता है. क्यों ? नीबू का अनुभव है, वो पानी लाया है मुंह में और नीबू शब्द में भी वो अनुभव समा गया है. शब्द भी सार्थक हो सकते हैं, अगर अनुभव से जुड़ जायं.

तो इसलिए हम पहला प्रयोग करेंगे बहने का. पांच मिनट तक प्रयोग करके अनुभव करें कि बहने का मतलब क्या है. और जब हमें भीतर से समझ में आ जाय कि यह रहा बहने का मतलब, यह मुर्दे की तरह होकर बह गये तो फिर जब मैं कहूंगा, बहें, तो आप समझ पायेंगे कि मैं क्या कह रहा हूं.

फिर दूसरा, फिर तीसरा, ऐसे पांच-पांच मिनट के तीन प्रयोग समर्पण की पूर्ण भावना को ख्याल में ले आने के लिए, फिर चौथा प्रयोग ध्यान का करेंगे; क्योंकि इन तीन को समझ के ही ध्यान किया जा सकता है.

एक तो थोड़े फासले पर बैठें. कोई किसी का स्पर्श न करता हो. ध्यान में कोई गिर भी सकता है. इसलिए इतनी दूरी पर बैठें कि कोई गिर जाय तो उससे कोई किसी के ऊपर न पड़ जाय. और इतनी जगह यहां है कि फैलकर बैठ जायं, पास बैठने की कोई जरूरत नहीं है. थोड़े फासले पर ही हो जायं, ताकि अपने को पूरी तरह छोड़ सकें, अन्यथा यही ख्याल बना रहेगा कि अपने को सम्हाले रखें. अपने को सम्हाले रखना बाधा हो जायगी. उसमें कंजूसी न करें. इतना दूर फासला पड़ा है, सब हट जायें. आवाज दूर तक सुनाई पड़ेगी, घने मत बैठें. शीघ्र हट जायें. इसमें प्रतीक्षा मत करें; क्योंकि छोटी-सी बात से बहुत कुछ खोया जा सकता है. ना, ना, वहां ऐसे हिलने से कुछ भी नहीं होगा. वहां हिलने से क्या फर्क पड़ेगा ? कोई आपके हिलने से जगह थोड़ी बन जायगी ? वहां से हट जायें. इतनी चारों तरफ जगह पड़ी है, यह मौका है उसका उपयोग करें पूरा. ऐसे बैठें कि आप बिलकुल बेफिक्र होकर बैठ सकें कि गिर गये तो गिर गये, कोई बात नहीं. और बातचीत नहीं, आवाज नहीं, चुपचाप. हां, किसी को लेटना हो, लेट जाय. लेटने में और भी सुविधा हो जायगी. और जगह तो काफी है, लेट सकते हैं. किसी को लेटना हो, पहले से ही लेट जायं; क्योंकि तब और आसानी से बह सकेंगे. बैठने में भी थोड़ा तनाव तो रहता ही है कि हम बैठे हैं. बैठना एक क्रिया है और लेटना एक क्रिया नहीं है.

अब पहली बात, पहला प्रयोग : पहला प्रयोग है बहने का प्रयोग. नदी में कोई आदमी तैरता है, हम में से भी बहुत लोग तैरे होंगे; अन्यथा लोगों को तैरते देखा होगा. जब कोई तैरता है तो कुछ करता है. लेकिन तैरने से बिलकुल उल्टी दशा है बह जाना, 'फ्लोटिंग'. एक आदमी बहता है, तैरता नहीं. अपने हाथ-पैर रोक लेता है और बहा चला जाता है. फिर नदी जहां ले जाय, वहीं चला जाता है. फिर उसकी अपनी जाने की कोई इच्छा न रही. तैरने वाले की इच्छा है. तैरने वाला कहीं पहुंचना चाहता है. तैरने वाला नदी से लड़ेगा. तैरने वाले को उस किनारे पहुंचना है. नदी अगर बाधा देगी तो

दुश्मन मालूम पड़ेगी. और नदी बाधा देगी; क्योंकि नदी अपने रास्ते भागी जा रही है. तैरने वाले का अपना रास्ता होगा तो भेद पड़ने ही वाला है. बहने का मतलब है, नदी के साथ एक हो जाना है. बहने के साथ नदी का कोई विरोध नहीं है. नदी जहां ले जाय वहीं हमारी मंजिल है. तब फिर नदी से कोई दुश्मनी नहीं रह जाती है. **समर्पण का पहला अर्थ है, इस जीवन के साथ हम बह सकें, तैरें ना. ध्यान की पहली सीढ़ी है—बहने का अनुभव.** तो जैसा मैं कहूं वैसा थोड़ा प्रयोग करें, ताकि भीतर उसकी 'फीलिंग', उसका अनुभव हो सके. आंखें बंद कर लें. बंद करने का मतलब भी कि आंखें बंद हो जाने दें, उन पर भी जोर न डालें. पलकों को ढीला छोड़ दें, ताकि आंखें बंद हो जायं. पलक झपक जाय और बंद हो जाय. आंखों को बंद हो जाने दें. शरीर को ढीला छोड़ दें, कोई अकड़, कोई कड़ापन शरीर में न रखें. शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें; क्योंकि हम कोई काम करने नहीं जा रहे हैं. हम बहने जा रहे हैं, तो हम अपने को बिल्कुल 'रिलेक्स' और ढीला छोड़ दें. आंख बंद हो गई, शरीर ढीला छोड़ दिया. देखिए बीच में आकर न बैठें. अब आप लोग पीछे चले जायं और जो भी पीछे आयें, पीछे बैठें. वहां बीच में न बैठें, पीछे...

अब एक छोटा-सा चित्र देखें, ताकि हम अनुभव कर सकें. देखें,... पहाड़ों के बीच में. सूरज की रोशनी में चमकते हुए पहाड़ों के बीच में एक नदी भागी चली जा रही है. आंखों के पर्दे पर ठीक से देखें, सूरज की रोशनी में पहाड़ चमक रहे हैं और नदी तेज गति से भागी चली जा रही है. नदी की लहरें चमक रही हैं. नदी जोर से शोर-गुल करती भागी चली जा रही है. नदी को बहुत ठीक से देखें. पहाड़ों के बीच भागती हुई नदी सागर की तरफ. उन दो पहाड़ों के बीच में बहती हुई एक नदी, तेज धार, बड़ी गति, गहरा नीला पानी, नदी भागी जा रही है सागर की खोज में. दूर कहीं अज्ञात में सागर है, नदी भागी जा रही है खोजने को. दूर की यात्रा पूरी करनी है पहाड़ों के बीच में कलकल बही जाती नदी की लहरें तेज हैं. गहरी हैं बहुत, नीला है रंग, गति है जोर की. जब ठीक से देखेंगे तो बराबर दिखाई पड़ने लगेगा कि नदी भागी जा रही है. इसके भागने को भी ठीक से देख लें. इसकी गहराई को भी ठीक से समझ लें; क्योंकि थोड़ी ही देर में इसके साथ हम भी बह रहे होंगे. इसकी गहराई में हम भी उतर जायेंगे. नदी का गहरापन, नदी का नीलापन, चमकता है धूप में. उसे देखते-देखते ही मन पर हल्की शांति छा जायगी. अब इस नदी में हमें भी उतर जाना है. उतर जायें मन के चित्र पर. मन की कल्पना पर देखें कि हम भी इस नदी में उतर गये. अब इस नदी में अपने को भी डाल दें, एक मुर्दे की भांति. फिर डूबने का उपाय ही न रहेगा.

अपनी लाश को बहता हुआ देखें इस नदी में. अब लाश तैर नहीं सकती इसलिए तैरने की कोशिश मत करना. तैरने का सवाल ही नहीं है. हाथ-पैर छोड़कर पड़ गये हैं. मुर्दे की तरह बहे जा रहे हैं. और तैरना नहीं है, बहना है. जैसे एक सूखा पत्ता नदी में बहने लगे, वैसे बहने लगें. और सूखा पत्ता तैरेगा कैसे ? उसके पास हाथ-पैर नहीं हैं. सूखे पत्ते की भांति हो जायं और नदी में बहना शुरू कर दें. लहरें बहाने लगेंगी. सागर की तरफ नदी भाग रही है, आप भी उसके साथ बहने लगें. नदी के साथ एक हो जायं. तैरेंगे तो हमें कुछ करना पड़ेगा. वह समर्पण न होगा. और बहेंगे तो नदी कुछ करेगी, वह समर्पण होगा. ध्यान में परमात्मा की नदी में हम अपने को छोड़ दें और बह जायं. हम कुछ भी न करें, उसके हाथों में छोड़ दें. जो उसे करना हो करे, न करना हो, न करे. जैसे कोई सूखा पत्ता बहती नदी में गिर गया हो, ऐसे ही नदी में गिर जायं और बह जायं. कोई प्रयास नहीं. नदी के लिए आप बोझ नहीं हैं; क्योंकि नदी को कोई मेहनत नहीं पड़ रही है, बस बही चली जा रही है.

ध्यान का पहला चरण है, 'फ्लोटिंग' का, बहने का अनुभव. एक पांच मिनट तक नदी में बहने का अनुभव करें, ताकि भीतर मन के कोने-कोने तक बहने की प्रतीति प्रगट हो जाय. बहें मुर्दे की भांति, कोई प्राण नहीं, हाथ-पैर हिलाने का कोई उपाय नहीं. चाहें तो भी नहीं हिला सकते. और बही जा रही है लाश तेजी से नदी के साथ. तैर नहीं रही है, कहीं जाना नहीं, कहीं पहुंचना नहीं है लाश को, सिर्फ नदी के साथ बहना है. सिर्फ बहने का ध्यान रहे; तैरना नहीं है. हाथ-पैर मत चलाना, छोड़ देना अपने को. नदी डुबाये तो डूब जाना, उबारे तो उबर आना. जहां ले जाय वहां चले जाना. हमारी कोई मंजिल नहीं है, हम बहने को तैयार हैं. अब मैं पांच मिनट के लिए चुप हो जाता हूं. आप नदी में बहें, ताकि बहने का ठीक-ठीक अनुभव ख्याल में आ जाय, कि बहने का अर्थ क्या है ? ध्यान की यह पहली सीढ़ी बनेगी. इसे ठीक से पहचान लेना जरूरी है. दो पहाड़ चमकते हुए सूरज की रोशनी में, नदी भागती है बीच से, उसमें हम भी बहे चले जा रहे हैं. और बहते ही बहते इतनी शांति मालूम होने लगेगी, इतनी ताजगी घेर लेगी, इतना आनंद भीतर प्रगट होने लगेगा, सब चिंतायें गिर जायेंगी, सब भार गिर जायगा; क्योंकि सभी चिंतायें तैरने की चिंतायें हैं, बहने वाले को कोई चिंता की जरूरत नहीं. सब तनाव गिर जायगा; क्योंकि सब तनाव तैरने वाले के तनाव हैं. बहने वाले को कोई तनाव की जरूरत नहीं. अब मैं चुप होता हूं. आप छोड़ दें अपने को, बिलकुल ढीला छोड़ दें और बह जायं .. छोड़ दें... बह जायं... बिल्कुल बह जायं.. नदी में छोड़ दें और बह जायं. नदी भागी चली जाती

है और आप बहे चले जाते हैं. छोड़ दें...बह जायं, बिल्कुल छोड़ दें.. नदी बहा ले जाय, बिल्कुल बह जायं, नदी के साथ एक हो जायं. बहने का ठीक से अनुभव करें, मन एकदम शांत होने लगेगा. एकदम शीतलता और ताजगी भीतर प्रवेश कर जायगी. बहें... (पक्षियों का मधुर कलरव) छोड़ दें शरीर को, छोड़ दें, बिल्कुल ऐसा छोड़ दें, जैसा मां की गोदी में चच्चा छोड़ देता है, ऐसा नदी की गोदी में अपने को छोड़ दें. नदी ले जायगी. बहें.. बहुत हलकापन लगेगा, मन का तनाव उतर जायगा. बहें...सब छोड़ दें और बह जायं...बिल्कुल छोड़ दें. नदी भागी चली जाती है, देखें पहाड़ चमकते हैं धूप में. नदी भागी चली जाती है और आप भी बहे जा रहे हैं. अपने को बहता हुआ देखें... एक पांच मिनट तक बहते-बहते ही मन का बहुत-सा कूड़ा करकट बह जायगा. चिंता, तनाव, अशांति बह जायगी. हलका हो जायगा सब. जैसे भीतर तक स्नान प्रवेश कर गया हो, जैसे आत्मा तक नहा गयी हो— ऐसी ताज़गी हो जायगी. बहें..... छोड़ दें अपने को. धूप में चमकते हुए पहाड़ हैं, नदी की धार है, ठंडी हवायें हैं, पक्षियों के गीत हैं और हम बहे जा रहे हैं. नदी भागी चली जाती है, उसमें पड़े हम मुर्दे की भांति बहे चले जाते हैं. छोड़ते ही सब शांत हो जाता है, पकड़ ही अशांति है, तनाव है. छोड़ दें फिर कैसा तनाव ? फिर कैसी अशांति ? नदी डुबा दे तो डूब जायं, नदी बहा दे तो बह जायं. नदी के साथ जरा भी विरोध न करें. देखें..... बहें... अपने को बहता हुआ देखें. यह अनुभव ठीक से कर लें बहने का, ध्यान की पहली सीढ़ी यही है. बह रहे हैं, बह रहे हैं, बह रहे हैं; तैर नहीं रहे हैं, कुछ कर नहीं रहे हैं. नदी बहाये लिये जा रही है. आपको कुछ भी नहीं करना है, बस, बह जाना है. देखें मन बिल्कुल शांत हो जायगा. एक ताजगी घेर लेगी... मन बिल्कुल मौन हो गया है, हलका, भारहीन, प्रफुल्लित हो गया है. मन स्वच्छ हो गया है, जैसे आत्मा तक नहा गई हो. जो जीवन की सरिता में बहना सीख गया है, वह तनाव से मुक्त हो जाता है, वह शांत हो जाता है.

अब धीरे-धीरे नदी से बाहर निकल आयें, किनारे पर खड़े हो जायें. नदी अब भी बही जा रही है, किनारे पर खड़े होकर दो क्षण अनुभव करें, नदी के बहने में कैसा सुख, कैसी शांति, कैसा आनंद भीतर भर दिया है! किनारे पर खड़े होकर पहचानें, अनुभव करें दो क्षण कि बहने के पहले और बहने के बाद में भीतर कुछ फर्क पड़ा ? मन कुछ हलका, शांत, ताजा हुआ ? नया हुआ ? कैसा सब ताजा शांत हो गया ! बाहर निकल आये हैं. अब धीरे-धीरे आंख खोलें और दूसरा प्रयोग समझें.

पहला प्रयोग है बहने का. 'फ्लोटिंग' ध्यान की पहली सीढ़ी है. दूसरा प्रयोग है, मरने का, मृत्यु का, मिट जाने का, जैसे कोई बीज मिटता है तो फिर अंकुर हो जाता है, जैसे कोई कली मिटती है तो फिर फूल हो जाती है. जब कुछ मिटता है, तभी कुछ हो पाता है. जब हम आदमी की तरह मिटेंगे, तभी हम परमात्मा की तरह हो पायेंगे. जन्म की पहली कड़ी मृत्यु है. और जो मरना नहीं सीख पाता, मिटना नहीं सीख पाता, वह कभी भी उस विराट तक नहीं पहुंच पाता, जहां तक पहुंचने में सब कुछ छूट जाना जरूरी है, जीसस का एक वचन है—"जो अपने को बचायेंगे, वह मिट जायेंगे और जो मिट जाते हैं, वह बचा लिये जाते हैं." तो दूसरा प्रयोग है, ध्यान की दूसरी सीढ़ी 'मिट जाने की.' ध्यान हम करते हैं तो परमात्मा कुछ करता है, हमें कुछ भी नहीं करना पड़ता है. हमें इतना ही करना पड़ता है कि हम उसे बाधा न दें और वो जो करना चाहता है, उसे करने की सुविधा दें. हम उसे करने देंगे. हम अपने को खुला छोड़ देंगे, वो आ जाय और जो उसे करना हो करे. सूरज निकला हो घर के बाहर और घर में अंधेरा हो. हमने द्वार बन्द किये हैं और हम किसी से पूछें कि हमें सूरज की किरणों को भीतर लाना है, हम क्या करें ? तो वो कहेगा; तुम कुछ न करो, सिर्फ द्वार खुले छोड़ दो; ताकि सूरज भीतर आ सके. तुम रोको मत, सूरज भीतर आ जायगा. तुम छोड़ दो द्वार खुला. सूरज को गठरियों में बांधके तो भीतर नहीं लाया जा सकता. उसकी किरणों को मुट्ठियों में बांधके तो हम घर के भीतर नहीं ला सकते, डब्बों में बंद करके तो भीतर नहीं ला सकते हैं, हम सिर्फ एक काम कर सकते हैं—'नेगेटिवली'—नकारात्मक और वह यह कि हम दरवाजा खुला छोड़ सकते हैं. फिर सूरज आ जायगा. परमात्मा की अनन्त शक्तियां इतना कर सकती हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं. हम सिर्फ बाधा न दें. हम बीच में खड़े न हों. हम छोड़ दें और कहें कि जो होना है, वह हो. दूसरा प्रयोग और भी गहरा है. बहते हैं, लेकिन फिर भी हम हैं. तैरते नहीं हैं तो भी हम हैं. हमारा होना भी बाधा है. दूसरे प्रयोग में होने को भी मिटा देना है.

बुद्ध तो ऐसा करते थे कि जो ध्यान सीखने आते उनके पास, उन्हें तीन महीने के लिये मरघट पर बिठा देते थे. तीन महीने मरघट पर ही निवास करना पड़ता, ध्यान करने वाले को और जब भी कोई लाश जलने आती तब उसे चिता के पास खड़ा हो जाना पड़ता. दिन में दो-चार-दस लोग भी मरते, रात मरघट का सुनसान होता और ध्यान यह था कि जब लाश जलती हो किसी की, तो वह जो ध्यानी है, वह किनारे खड़ा हो जाय और

अनुभव करता रहे कि मैं ही जल रहा हूं, मैं ही जल रहा हूं. यह और कोई नहीं जल रहा है, चिता पर मैं ही जल रहा हूं. तीन महीने में उस, आदमी का शरीर बोध नष्ट हो जाता. तीन महीने में 'मैं शरीर हूं,' यह कल्पना ही मिट जाती. 'मैं शरीर हूं,' यह भाव ही टूट जाता. तीन महीने निरंतर अपने को चिता पर चढ़ाके वह अनुभव कर पाता कि मैं अलग हूं—मैं पृथक हूं.

अब हम दूसरा प्रयोग करेंगे. यह ख्याल में ले लेंगे अनुभव, ताकि फिर ध्यान में वे अनुभव हम काम में ला सकें. दूसरा प्रयोग करने के लिये बैठें पांच मिनट के लिये मृत्यु के अनुभव में उतरें. आंख बन्द हो जाने दें. पलकों को ढीला छोड़ दें, ताकि आंख बन्द हो जाय. शरीर को ढीला छोड़ दें. बिलकुल ढीला छोड़ दें. उसको हमें पकड़के नहीं रखना है. वह छोड़ ही दिया और आंख बंद हो गयी है. और कोई किसी दूसरे की फिक्र में न रहे. क्योंकि दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है कि आप बीच-बीच में किसी को देखें कि किसको क्या हो रहा है. किसी से कोई मतलब नहीं. आपको क्या हो रहा है, यह सवाल है. किसी को कुछ हो रहा है या नहीं हो रहा है, यह मूल्य ही नहीं है कुछ. तो किसी को, किसी दूसरे को देखने की फिक्र छोड़ देनी चाहिये, अन्यथा वो दूसरे को देखने में अपने को देखने से वंचित रह जायगा. आंख बन्द करने को इसलिए कहता हूं, ताकि आप दूसरे की फिक्र छोड दें. भीतर अकेले ही रह जायं. आंख बंद कर लें और अब दूसरा चित्र देखें. आंखों के सामने एक चिता जल रही है. जोर से चिता में लपटें उठ रही हैं. चिता के चारों तरफ अंधेरे में भी चेहरे पहचाने जा सकते हैं. आपके मित्र, प्रियजन सब इकट्ठे हो गए हैं. बहुत बार मरघट पर गए होंगे, लेकिन किसी और को जलाने. आज अपने को ही जलाने आप भी पहुंच गए हैं सबके साथ. चिता जल गई है. चिता की लपटें बढ़ती चली जा रही हैं. ठीक से चिता को देख लें, क्योंकि इसी चिता पर थोड़ी देर में चढ़ जाना है. अभी हम नदी में बहे थे, अब आग में बह जाना है. नदी बहा सकती है, आग मिटा ही देती है. देख लें ठीक से आखों के पर्दे पर आग जल रही है, चिता जल रही है. जोर से लपटें उठती हैं आकाश की तरफ. घेरा बांध कर मित्र, प्रियजन सब इकट्ठे खड़े हैं, उनके चेहरे भी दिखाई पड़ते हैं. आग की लपटों में उनके चेहरे चमकते हैं. आग की लपटों को ठीक से देख लें. अभी इसमें हमें ही उतर जाना है. यह किसी और की चिता नहीं है, हमारी ही चिता है. देखें चिता जल रही है और आप ही चिता पर चढ़ा दिए गए हैं. लाल लपटें आकाश की तरफ उठ रही हैं, चिता पूरी सुलग गई है और मित्र, प्रियजन, बंधु सब आपकी अर्थी खोल रहे हैं और आपकी लाश को आपके प्रियजन चिता पर रख रहे हैं.किसी

और को बहुत बार चिता पर चढ़ाया, किसी दिन हमको बहुत और लोग चढ़ायेंगे. ध्यान में हम खुद ही अपने को चढ़ा के देख लें कि क्या होगा ! चढ़ा दें चिता पर. हवायें तेज हैं, लपटों को उभाड़ती है, भभकाती हैं; और चिता पर कोई और नहीं चढ़ा है, हम ही चढे हैं, हम ही पड़े हैं—वह भी देख लें ठीक से कि हम ही जल रहे हैं. अब चिता ही नहीं जल रही, आप भी जल रहे हैं.

किसी मित्र ने पूछा है कि चढ़ा तो देता हूं चिता पर अपने को, लेकिन फिर भी मैं तो किनारे खड़ा देखता रहता हूं. निश्चित ही, कुछ हमारे भीतर है, जो सच में ही हम चिता पर चढ़ेंगे तो भी किनारे खड़े होकर ही देखता रहेगा. कल्पना की चिता पर ही नहीं, असली चिता पर भी जब आप चढ़ेंगे, मैं चढ़ूंगा तो कुछ है, जो किनारे खड़ा होकर देखता रहेगा. कुछ है, जो बाहर खड़े होकर देखता रहेगा. शरीर तो चढ़ा दिया जा सकता है चिता पर, लेकिन कुछ है भीतर—जो चिता पर चढ़ ही नहीं सकता, जिसे कोई अग्नि नहीं जला सकती, जिसकी कोई मृत्यु नहीं. वह तो बाहर खड़े होकर देखता रहेगा. अपने को जलता हुआ अगर ठीक से देख लें तो हम दूसरे ही आदमी हो जायेंगे. बाद में हम वही आदमी कभी नहीं हो सकते, जो चिता पर चढ़ने के पहले थे. कुछ तो हम में जल ही जायगा. कुछ तो हम में नष्ट हो ही जायगा. देखते रहें पांच मिनट तक स्वयं को जलते हुए. अपने को जलता हुआ देखें... थोड़ी देर में सब राख हो जायगा, सब मिट जायगा. न चिता रह जायगी, न हम रह जायेंगे. थोड़ी-सी राख मरघट पर पड़ी रह जायगी. एक पांच मिनट के लिए अपने को जलता हुआ देखें. सब जल रहा है. भागने का मन होगा, भाग नहीं सकते हैं, मर ही गये हैं, भागेंगे कहां ? चिता से उतर आने का मन होगा, उतर नहीं सकते हैं. उतरेगा कौन ? थोड़ी देर में राख बनने लगेगी. यह मित्र, प्रियजन बिदा हो जायेंगे. मरघट शांत सन्नाटे में रह जायगा. ठीक से देखें, चढ़े हैं चिता पर, जल रहे हैं. आग की लपटें उठ रही हैं, सब जला जा रहा है. हम भी जले जा रहे हैं. पांच मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं. छोड़ दें आग में अपने को. आग जोर पकड़ती जा रही है और हम जल रहे हैं. अपने को जलता हुआ देखें. थोड़ी देर में राख पड़ी रह जायगी, मरघट पर सन्नाटा हो जायगा. सब जल जायगा, सिर्फ वही बच रहेगा, जो जल नहीं सकता है. जो जल सकता है, वह जल जायगा. और उसी की तो हमें पहचान करनी है, जो जल न सके. जो जलता है, उसे जल जाने दें. देखें...आग लगी है, चिता की लपटें जल रही हैं, आप भी जले जा रहे हैं, जले जा रहे हैं, जले जा रहे हैं. .. लपटें बढ़ती जाती हैं, शरीर जलता जा रहा है. थोड़ी

देर में सब राख हो जायगा. हम ही राख हो जायेंगे और अपने को राख हुआ देखना बड़ा गहरा अनुभव है. देखें... सब राख हुआ जा रहा है— सब जलता जा रहा है. इधर लपटें बढ़ती हैं, उधर राख बढ़ रही है. हम जले जा रहे हैं, समाप्त हुये जा रहे हैं. लपटों के पास कौन होगा ? अब वे दूर खड़े हैं, बहुत बेरहम लपटें उनको झुलसाती हैं. राख से कौन प्रेम करेगा ? राख के लिये कौन रुकेगा ? अब वे जा रहे हैं. मित्र, प्रियजन, बंधु सब आखरी नमस्कार करने आये हैं. मित्र, प्रियजन जाने शुरू हो गये हैं. उनकी पीठ दिखाई पड़ने लगी, मुंह और दिखाई नहीं पड़ता. लौट रहे हैं. आखिर वे मरघट में कब तक खड़े रहें ? वे जाने लगे हैं. वे जा रहे हैं. वे वापिस चल पड़े हैं, उनके पदचाप पैरों के सुनाई पड़ने लगे हैं. वे जा चुके हैं. मरघट अकेला रह गया, चिता ही रह गई, बिलकुल मिट जाना है. मिट जायं ... ...

अब मरघट पर कोई भी दिखाई नहीं पड़ता है. लपटें भी बुझने लगीं, राख का ढेर रह गया है. मरघट पर सन्नाटा छा गया है. सब मिट जायगा. थोड़ी देर में अंगारे भी बुझ जायेंगे और राख पड़ी रह जायगी. देखते रहें अपने को मिटते देखना बहुत गहरा अनुभव है. ध्यान की दूसरी सीढ़ी वही है. मरघट निर्जन हो गया. अंधेरा घिर गया और राख का ढेर इकट्ठा हो गया. लपटों की आवाज भी बंद हो गई. अंगारे भी बुझने लगे हैं. राख का ढेर पड़ा है. देखें,... ठीक से देखें मरघट पर कोई नहीं है. अंधेरी रात है, अंधेरे में दबी राख भर पड़ी रही, सब सुनसान है, अंगारे बुझ गये हैं, लपटें बुझ गईं, मरघट एकांत, अकेला, अंधेरे में डूबा. एक ढेर है राख का, हमारी ही राख का. ... . हम मिट गए हैं. राख का एक ढेर और मरघट और सन्नाटा है. हवायें आती हैं और राख उड़ जाती है. इस राख को सम्हालने को भी कोई न रहा. यही हैं हम ! यही थे हम ! राख के इस ढेर को ठीक से पहचान लें, यही है वो चेहरा, जिसको बहुत बार दर्पण में देखा है. यही है वह शरीर, जिसे जीवन भर, अनेक-अनेक जीवन सम्हाला. यह राख का ढेर बहुत बड़ी सच्चाई है. इसे ठीक अनुभव कर लें. ध्यान का दूसरा चरण यही है. सब मिट गया है, सब मिट गया है, सन्नाटा है. राख का ढेर पड़ा है, उसे ठीक से देखें... ... ...देख लिया ? राख के ढेर को, अपने होने को, अपनी आखिरी परिणति को ?

स्वयं का मिट जाना ध्यान का दूसरा चरण है. मिट्टी, मिट्टी में मिल गई है. इस भाव के आते ही कि सब मिट गया है, गहरी शांति उतर जायगी. प्राण के भीतरी कोने तक सन्नाटा छा जायगा. जब हम ही मिट गए तो कैसी चिंता, कैसी अशांति, कैसा दुःख, कैसी पीड़ा ! सब समाप्त हो गया. शून्य

भीतर रह गया. और न मालूम इसी राख के ढेर ने कितने सपने देखे ! न मालूम क्या-क्या सोचा, बनाया, बिगाड़ा ! अब ! अब मिट्टी हो चुके हैं. जो मिट सकता है, वही प्रभु को पा सकता है. जो मिटने में असमर्थ है, वह उसे पाने का पात्र भी नहीं है. प्रभु के चरणों में यही समर्पित करना है—अपनी ही राख, अपनी ही मृत्यु, अपना ही मिट जाना और उसके द्वार खुल जाते हैं ... ... रूप तो मिट गया, अब अरूप रह गया है. आकार तो मिट गया, अब निराकार रह गया है. देह तो मिट गई, आत्मा रह गई है. अब धीरे-धीरे आंख खोल लें, फिर तीसरा प्रयोग समझें और पांच मिनट के लिए तीसरा प्रयोग करें.

पहला प्रयोग है, बहने का अनुभव. दूसरा प्रयोग है, मरने का अनुभव. और तीसरा प्रयोग है तथाता. तीसरा प्रयोग सबसे गहरा प्रयोग है. उसे ठीक से समझ लेना जरूरी है. तथाता का अर्थ है, चीजें जैसी हैं वैसी हैं. हमें उनसे कोई विरोध नहीं. पक्षी आवाज कर रहे हैं, कर रहे हैं. धूप गर्म है. हवायें चलती हैं और ठंड मालूम पड़ती है, जिन्दगी जैसी है, वैसी हमें स्वीकार है. न हम उसमें कोई बदल करना चाहते हैं, न कोई हेर-फेर करना चाहते हैं. हमारा कोई विरोध नहीं, हमारी कोई अस्वीकृति नहीं है. तथाता का अर्थ है— 'थिंग्स आर सच'— चीजें ऐसी हैं और हम उनके लिए राजी है. तथाता का अर्थ है, परिपूर्ण राजी हो जाना, 'टोटल एक्सेप्टेबीलिटी'. जब हम किसी चीज के लिए पूरी तरह राजी हो जाते हैं तो चित्त की सब अशांति खो जाती है. तब चित्त का सर्व रोग, सब बीमारी, विनष्ट हो जाती है. तब चित्त का सब तनाव समाप्त हो जाता है. हमारे मन का तनाव और अशांति हमारे विरोध से पैदा होती है. हम चाहते हैं, चीजें ऐसी हों. अब एक कौवा आवाज करेगा, एक पक्षी चिल्लायेगा और हम चाहेंगे कि ध्यान कर रहे हैं, पक्षी चुप हों. लेकिन पक्षियों को आपके ध्यान से क्या प्रयोजन ? हवायें चलेंगी और हम चाहेंगे, हवायें न चलें, थोड़ी देर ठहर जायं. रास्ते पर गाड़ियां निकलेंगी, आवाज होगी, हॉर्न बजेगा और हम चाहेंगे, यह सब बड़ी बाधा, बड़ा 'डिस्टरबेन्स', तब फिर ध्यान में आप कभी भी न जा सकेंगे , जिन्दगी आपके लिये ठहर नहीं सकती है. जिन्दगी चलेगी, चलती रहेगी. फिर क्या रास्ता है ? जो लोग भी ध्यान करने बैठते हैं, उनकी परेशानी यह है कि कभी कोई रास्ते पर हॉर्न बजा देता, कभी कोई बच्चा रोने लगता, कभी कोई कुत्ता आवाज करने लगता, कभी कोई सड़क पर झगड़ा हो जाता, उनकी मुसीबत यह है कि 'डिस्टरबेन्स' हो जाते हैं. लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर तथाता की बात समझी तो इस दुनिया में 'डिस्टरबेन्स' जैसी चीज है ही नहीं. तथाता का मतलब है, जो हो रहा है, हमें स्वीकार है. 'डिस्टरबेन्स'

का सवाल कहां है ? 'डिस्टरबेन्स' तो तब होता है, दिल में बाधा तब होती है, जब हम कहते हैं, ऐसा न हो और होता है, तब परेशानी होती है.

लेकिन हम कहते हैं, जैसा हो रहा है वैसा हो रहा है, हम राजी हैं. हॉर्न बजता है तो हम सुनने को राजी हैं. बच्चा रोता है तो हम सुनने को राजी हैं. पक्षी चिल्लाते हैं तो हम सुनने को राजी हैं. हमारा कोई विरोध ही नहीं. हम इस जीवन में एक विरोधी की तरह खड़े नहीं होते हैं. हम इस जीवन को एक मित्र की तरह स्वीकार कर लेते हैं. स्वीकृति का भाव ध्यान की गहरी से गहरी बात है. और जो व्यक्ति सब स्वीकार कर लेता है, वो व्यक्ति सबसे मुक्त हो जाता है. जहां तक हमारा विरोध है, वहां तक हमारा बन्धन है. जहां तक हम अकड़े हैं, वहां तक हमारी मुसीबत है. जहां तक हम कह रहे हैं, ऐसा हो, ऐसा न हो, वहां तक परेशानी है. लेकिन जब हम कहते हैं, जैसा हो रहा है, वैसा हो रहा है, हमें स्वीकार है, हम राजी हैं, हम भी उसी के एक हिस्से हैं, तब फिर सब विरोध खो जाता है. तथाता ध्यान का केन्द्र है. जो है, हम उसके वैसे होने से पूरे राजी हैं. हम उससे अन्यथा की मांग करते हैं, न आकांक्षा करते हैं. पक्षी हैं, चिल्लायेंगे ही; पत्ते हैं, हिलेंगे ही, आवाज करेंगे ही, शोर-गुल होगा. हम स्वीकार करते हैं, तथाता का अर्थ है, हमें सब स्वीकार है, कोई विरोध नहीं. और जब कोई विरोध न हो तो अशांति कहां, बाधा कहां, तब कोई भिन्न कहां. और जब कोई विरोध न हो तो चित्त एकदम विलीन हो जाता है, वह शून्य हो जाता है. विरोध में ही हम खड़े होते हैं और मजबूत होते हैं. विरोध में ही अहंकार निर्मित होता है. जितना मैं कहता हूं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं, उतना ही मैं मजबूत होता चला जाता हूं. जब मैं कहता हूं, जैसा है, है, ऐसा ही सही, ऐसा ही सही, ऐसा ही सही तो 'मैं' के खड़े होने का उपाय कहां ! जीवन जैसा है, अगर स्वीकृत है तो अहंकार के बनने का उपाय नहीं. अस्वीकार से आता हैं अहंकार, निर्मित होता है, घना होता है, मजबूत होता है. जब मैं कहता हूं—पत्ते ऐसे न हों, चांद ऐसा न हो, हवायें ऐसी न हों, पक्षी आवाज न करें, रास्ते पर सन्नाटा हो, तब मैं यह कह रहा हूं कि मेरी आज्ञा से सब चलें. मैं सब के ऊपर बैठ जाऊं, मैं मालिक हो जाऊं. लेकिन जब मैं यह कह रहा हूं—जो जैसा चले, धन्य भाग, जो जैसा चले, स्वीकार, जो जैसा है चले, आभार है, जो जैसा है, कृतज्ञ हूं, जो जैसा चल रहा है, ठीक है, तब मैं अपने को थोपता नहीं. तब मैं विदा हो जाता हूं. तब मैं सबके साथ एक हो जाता हूं. तथाता का अर्थ है, सर्व स्वीकृत—'टोटल एक्सेप्टेन्स', जो है, वैसा ही स्वीकार है. और अगर पांच मिनट भी सब स्वीकार किया तो हैरान हो

जायेंगे कि मन कैसी शांति के नये लोकों में प्रवेश कर जाता है. **सबके लिए राजी होने से, सबके प्रति प्रेम बहना शुरू हो जाता है.** तीसरे प्रयोग की गहरी दिशा में अब एक ही हो जाना है वो सब से, जो है. पक्षियों की आवाजें हैं, वे पक्षियों की ही नहीं, हमारी ही आवाजें हो जायेंगी और हवायें बह रही हैं, उनके झोंके पत्तों को हिला रहे हैं. वे हवायें न रहेंगी, वे हम ही हो जायेंगे. और पत्ते हिल रहे हैं; सूरज की धूप में चमक रहे हैं; हवाओं में नाच रहे हैं—वे पत्ते न रह जायेंगे, वे हम ही हो जायेंगे. जो भी है, उसके साथ हम एक हो जायं. कैसे एक हो सकते हैं ? स्वीकार से. अगर सब हमें स्वीकार हो जाय तो हमारा भेद गिर जाता है. **अद्वैत को वही उपलब्ध होता है, अभेद को वही उपलब्ध होता है, जो सर्व स्वीकार को उपलब्ध हो जाता है. जिससे हम विरोध करते हैं, उससे हम टूट जाते हैं. जिससे हमारा विरोध नहीं, उससे हम जुड़ जाते हैं. जिसे हम इन्कार करते हैं, उसके हमारे बीच सीमा खिंच जाती है. अगर हम सर्व और अपने बीच कोई सीमा न खींचें, कोई भेद रेखा न खींचें, कोई विरोध न बांधें तो सर्व और हमारे बीच न कोई रेखा है, न कोई भेद है, न कोई विरोध है.** हमारा खींचा हुआ विरोध है, हमारी खींची हुई रेखा है. उस रेखा को हम अभी पोंछ डाल सकते हैं.

ध्यान के तीसरे प्रयोग में उस रेखा को बिल्कुल पोंछ डालना है. तब ऐसा अनुभव नहीं करना है कि मैं यहां हूं और वहां पक्षी आवाज कर रहे हैं. ना, जो आवाज कर रहा है पक्षियों में, वही यहां सुन भी रहा है. विरोध कैसा ! किसका विरोध ? मैं ही आवाज कर रहा हूं, मैं ही सुन रहा हूं. सर्व स्वीकार से—ऐसी प्रतीति होनी शुरू हो जाती है. ट्रेन के पहियों की आवाज उसकी सीटी का शोर, वह हमारे भीतर ही उठता हुआ मालूम पड़ेगा. ऐसा लगेगा, हम फैलके बहुत बड़े हो गये हैं. सारे जगत को घेर लिया और सब हमारे भीतर ही हो रहा है. 'थिंग्स आर सच', चीजें ऐसी हैं, और हमने उन्हें स्वीकार कर लिया—हमारा कोई विरोध नहीं.

एक फकीर के पास एक आदमी गया था. और उस फकीर से उसने कहा कि आप तो बहुत शांत हैं और मैं बहुत अशांत हूं, तो मुझे शांत होने का रास्ता बता दें. उस फकीर ने कहा—"रास्ते की क्या जरूरत है ? मैं शांत हूं, तुम अशांत हो. मैं अपनी शांति में राजी हूं, तुम अपनी अशांति में राजी हो जाओ." उस आदमी ने कहा—"मैं कैसे राजी हो जाऊं ? मैं अशांत हूं, मुझे अशांति मिटानी है." उस फकीर ने कहा—"जब तक मिटाना है, तब तक तुम शांत न हो सकोगे. अपनी अशांति में राजी हो जाओ, फिर देखो अशांति

बचती है या नहीं बचती ! अगर कोई अपनी अशांति में राजी हो जाय तो अशांति फिर कहां है ? अशांति तो नाराजी में थी, अशांति तो विरोध में थी, अशांति तो इस बात में थी कि नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए, अशांति नहीं होनी चाहिए, मुझे शांत होना है." उस आदमी ने कहा—"आप ठीक कहते हैं, लेकिन मुझे शांत होना है." उस फकीर ने कहा—"फिर तो तुम न हो सकोगे. और मैं तो कभी तुम्हारे पास पूछने न आया था कि, तुम बड़े अशांत हो, मैं बड़ा शांत हूं तो मुझे अशांत होना है. मैं किसी के पास पूछने नहीं गया था. मैं जैसा था, मैं वैसे को ही राजी हो गया और फिर मैं शांत हो गया. शांति परिणाम है. हम जैसे हैं, वैसे ही राजी होने का अंतिम फल है. शांत कोई भी नहीं हो सकता. जो, जो है, वैसा ही होने को राजी हो जाय, शांति पीछे चली आती है छाया की तरह." उस आदमी ने कहा—"फिर भी मेरी समझ में नहीं आता." उस फकीर ने उसका हाथ पकड़ा और मकान के बाहर ले आया. वहाँ आकाश को छूता हुआ एक बड़ा दरख्त था. ऊपर चांद निकला है, ऊपर आकाश तक उठ गया है वृक्ष और पास में ही एक छोटा-सा पौधा भी है. उस फकीर ने कहा—"देखते हो उस दरख्त को ?" उस आदमी ने कहा—"हां, देखता हूं, बहुत बड़ा है. आकाश को छूता है." और उस फकीर ने कहा—"देखते हो इस छोटे से पौधे को ?" उसने कहा—"हां, देखता हूं, बड़ा छोटा है बेचारा !" उस फकीर ने कहा—"बीस साल से मैं यहां हूं, लेकिन मैंने इस छोटे पौधे को बड़े दरख्त से कभी पूछते नहीं देखा कि तू बहुत बड़ा है, मैं बहुत छोटा हूं, मैं बड़ा कैसे हो जाऊं ? मैंने इनके बीच कभी चर्चा नहीं सुनी है." छोटा अपने छोटे होने में राजी है और इसलिए छोटा नहीं रह गया. क्योंकि छोटा तो वह तभी मालूम पड़ सकता है, जब वह छोटे होने को राजी न रह जाय और बड़े की कामना करने लगे. बड़ा अपने बड़े होने में राजी है इसलिए बड़ा नही है; क्योंकि बड़े का कोई सवाल ही नहीं है. किसी से उसने तुलना ही नहीं की है. वो फकीर कहने लगा—"यह छोटे में राजी है, वो बड़े में राजी है, दोनों बड़े मजे में हैं. छोटा, छोटा है, बड़ा, बड़ा है, कोई झंझट नहीं, कोई झगड़ा नहीं, कोई तुलना नहीं, कोई अशांति नहीं." उस आदमी ने कहा—"लेकिन, फिर भी नहीं समझा मैं." तो उस फकीर ने कहा कि तू अपनी नासमझी में ही राजी हो जा. अब तू समझने की भी कोशिश मत कर. जा और समझ ले कि मेरी समझ में नहीं आता और इसके लिए राजी हो जा.

तथाता का मतलब है, अज्ञान के लिए भी, अशांति के लिए भी, जो भी हमारे भीतर बाहर है—सबके लिए राजी हैं. एक पांच मिनट के लिए अविरोध का प्रयोग करें, स्वीकार के भाव में डूब जायं. यह भी स्वीकार है,

वह भी स्वीकार है. अविरोध के भाव में लीन हो जायं श्वास-श्वास में, रोयें-रोयें में, स्वीकार की भावना भर जाय, तो पांच मिनट में आप पायेंगे, ऐसे आनंद के स्रोत खुल गये हैं, जो बिल्कुल अपरिचित थे—ऐसे द्वार खुल गये हैं, जो सदा बंद थे—और ऐसी शांति बह गई चारों तरफ, जिसे हमने कभी न जाना था. तो तीसरा प्रयोग पांच मिनट करें और फिर चौथा प्रयोग ध्यान का होगा. इन तीनों के जोड़ से ध्यान निकलेगा. तथाता का तीसरा प्रयोग करें. आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें. आंख को बंद हो जाने दें और शरीर को ढीला छोड़ दें. शरीर के ढीले होने का मतलब है, हम अपने चारों तरफ से एक हो गये, अलग न रह गये. अब जो कुछ भी हो रहा है, उसे चुपचाप अनुभव करते रहें, जानते रहें; विरोध न लें. गाड़ी आवाज करती है, पक्षी गीत गाते हैं, सब स्वीकार कर लें. जो भी हो रहा है, हो रहा है. हम राजी हैं, इसको भीतर मन में घूम जाने दें. हम राजी हैं, जो भी हो रहा है. हमारा कोई विरोध नहीं. जो भी हो रहा है, जो भी हो रहा है, हम राजी हैं. और बाहर ही नहीं, भीतर भी राजी हैं. अगर पैर शून्य हो गया, अगर पैर को चींटी काटती है, हम उसके लिए भी राजी हैं. हमारा कोई विरोध नहीं है. बाहर भीतर सब तरफ हम राजी हैं. एक पांच मिनट के लिए तथाता की स्थिति में अपने को छोड़ दें. धूप पड़ रही है चेहरे पर, पसीना बहने लगे, हम राजी हैं. ठीक है, धूप पड़ेगी, पसीना बहेगा और जब हम राजी होंगे, तब धूप भी बड़ी शीतल मालूम पड़ने लगेगी. देखें, सड़क की आवाज भी बहुत प्रीतिकर मालूम होगी, जब हम राजी हों. जब हम राजी हैं, तब सारा जगत प्रीतिकर अनुभव होने लगता है. और उसी प्रेम के द्वार से परमात्मा का आगमन होता है. जब हम राजी हैं, तब प्रेम और जब प्रेम, तब परमात्मा है.

अब पांच मिनट के लिये मैं चुप हो जाता हूं. आप राजी हो जायं. सब समग्र रूप से स्वीकार कर लें और फिर देखें मन कैसा शांत हो जाता है. जैसा कभी न हुआ होगा. मन के भीतर शांति के झरने फूट पड़ते हैं, जैसे कभी न फूटे होंगे. एक भीतर प्रकाश छा जाता है. एक आलोक शीतल, एक ठंडी प्रकाश की छाया फैल जाती है. देखें, चुपचाप अनुभव करें. जो है, है और हम राजी हैं. पक्षियो आवाज करो ! हवाओ बहो ! सूरज तपो ! हम राजी हैं ... ... राजी हैं ... ... हम राजी हैं, हम राजी हैं, जो भी है उसके लिये हम राजी हैं— हमारा कोई विरोध नहीं । हम इस बड़े जगत के एक हिस्से मात्र हैं. इन हवाओं के भी हम हिस्से हैं. इन आवाज करते पक्षियों के भी, इस तपती हुई धूप के भी, सड़क पर होते शोरगुल के

भी—हम इस बड़े जगत के एक हिस्से हैं. हिस्सा विरोध कैसे कर सकता है ? हमारा कोई विरोध नहीं ! हम राजी हैं. हम बिलकुल राजी हैं . छोड़ दें अपने को इस स्वीकृति में. जो भी हो रहा है, ठीक है, शुभ है. जो भी हो रहा है, सुन्दर है. जो भी हो रहा है, हम राजी हैं, हमारा कोई विरोध नहीं. और देखें, मन कैसा मौन होता चला जाता है. और देखें, भीतर कैसा नया प्रकाश फैलने लगता है. और देखें, मन कैसी शांति से भरता चला जाता है ... ... ट्रेन की आवाज कैसी प्रीतिकर है. पक्षिओं की आवाजें हैं, हवाओं की आवाज है. ... ... वृक्ष का, पत्तों का हिलना सब स्वीकार है. जीवन जैसा है, स्वीकृत है. स्वीकार ... स्वीकार ... समग्र स्वीकार... जो भी है, स्वीकृत है. और जैसे ही स्वीकार होता है, हम समस्त के एक हिस्से मात्र हो जाते हैं. फिर सूरज अलग नहीं, पक्षी अलग नहीं, वृक्ष अलग नहीं, पृथ्वी अलग नहीं, आकाश अलग नहीं, कोई अलग नहीं, सब जुड़ गया, सब एक हो गया. हम सबके साथ एक हो जाते हैं. छोड़ दें... ... ... सब स्वीकार कर लें.....फिर धूप अलग नहीं, वृक्षों की हलचल अलग नहीं, यह पक्षियों की आवाज अलग नहीं, अब सब एक हैं . यह जो विराट का सागर है उसमें लीन हो जायें—एक हो जायं. ठीक से अनुभव कर लें तथाता को, इस स्वीकृत को, इस राजी होने को. यह ध्यान का तीसरा चरण है. ठीक से पहचान लें, क्या अर्थ है स्वीकार का. देखें ... ... भीतर कहीं कोई विरोध तो नहीं. देखें, भीतर कहीं किसी चीज को इन्कार करने का भाव तो नहीं. देखें, कहीं किसी चीज के कारण भीतर वहम और बाधा तो नहीं बनती ! अनुभव कर लें, सब स्वीकृत है, सब स्वीकृत है, जो हो रहा है, स्वीकृत है. अस्वीकार है ही नहीं. तथाता ध्यान की आत्मा है, प्राण है. स्वीकार करते ही शांति का द्वार खुलता है. जगत से कोई विरोध नहीं; क्योंकि हम जगत के ही हिस्से हैं. विरोध कैसा ! दुश्मनी कैसी ! शत्रुता कैसी ! और तब प्राणों का बाहर के प्राणों से मिलन हो जाता है. छोड़ दें. भाव उठेगा, विचार चलेगा, स्वीकार ... ... स्वीकार ... ... श्वास-श्वास में एक ही निवेदन—सब स्वीकार है ... . रोयें-रोयें में एक ही प्रार्थना, एक ही पुकार—सब स्वीकार है ... ... मन गहरे अर्थों में शून्य होता जा रहा है. सीमायें गिर जायेंगी और सब एक हो जायगा. देखें—भीतर कोई विरोध तो नहीं, कोई अस्वीकृति तो नहीं है. हो, तो विदा कर दें. हम समग्र के लिये पूर्ण राजी हैं. श्वास-श्वास शांत हो गयी. देखें—भीतर एक सन्नाटा छा गया है. अब गहरी श्वास लें और धीरे-धीरे आंख खोल लें फिर ध्यान का प्रयोग समझें और फिर हम अन्तिम प्रयोग ध्यान का करेंगे.

यह तीन प्रयोग समझने के लिये किये. यह तीन चरण हैं ध्यान के. पहला प्रयोग है बह जाने का. प्रयोग हमने इसलिये किये, ताकि शायद शब्द से समझ में न आये तो अनुभव से समझ में आ जाय, इसलिए कल्पना की. तैरने और बहने के विरोध को समझ लिया होगा. तैरना एक अहंकार है, बह जाना समर्पण है. दूसरा प्रयोग हमने किया मिट जाने का, समाप्त हो जाने का. अगर कोई बूंद, बूंद ही रहना चाहे तो फिर सागर को नहीं जान सकती. बूंद को सागर को जानना है तो मिटना पड़ेगा. लेकिन बूंद सागर में खोके मिटती नहीं है, सागर हो जाती है. छोटे से और विराट हो जाते हैं. असल में छोटे हम हैं. अगर बड़े को जानना हो तो मिटना पड़ेगा. छोटा होना मिटे तो ही बड़ा होना हो सकेगा. क्षुद्र हम हैं, सीमा में बंधे हम हैं. सीमायें टूटें तो ही हम असीम हो सकें. लेकिन हम सब अपने को बचाने में लगे हैं. ध्यान की दूसरी कड़ी है, अपने को बचाना नहीं; छोड़ देना, मिट जाना, समाप्त हो जाना है. निश्चित ही जो मिट सकता है, वही मिटेगा. जो नहीं मिट सकता है, वह नहीं मिटेगा. और हमारे भीतर दोनों हैं, वह भी जो मिट सकता है, वह भी जो नहीं मिट सकता है. जो मिट सकता है, वह मिटेगा ही. हम चाहें, चाहे न चाहें. जो नहीं मिट सकता है, वह हम चाहें तो भी नहीं मिट सकता है. वह रहेगा, रहेगा. तो दूसरा प्रयोग हमने किया चिता पर चढ़ जाने का, जल जाने का, राख हो जाने का. ध्यान में बहुत जरूरी है; क्योंकि मिटना पड़ेगा, मरना पड़ेगा. **ध्यान स्वेच्छा से लाई गई मृत्यु का नाम है.** तीसरा प्रयोग हमने किया तथाता का. तथाता का अर्थ है, चीजें जैसी हैं, उनकी स्वीकृति. और यदि कोई स्वीकार कर ले तो फिर अशांत ही नहीं हो सकता है. अशांति आती है अस्वीकार से. तनाव आता है अस्वीकार से.हमारी जिन्दगी में सब चिंता और परेशानी आती है अस्वीकार से.

एक बैलगाड़ी जाती है, एक शराबी बैठा हुआ है. साथ में आप भी बैठे हुए हैं और बैलगाड़ी उलट जाय तो ध्यान रखना, आपको चोट लगेगी शराबी को चोट नहीं लगेगी. और बड़े मजे की बात है कि चोट शराबी को लगनी चाहिए थी; क्योंकि शराब पिये हुए था. हमें क्यों चोट लग गयी ? हम तो शराब पिये हुए न थे. लेकिन गाड़ी उलटे तो शराबी बच जाय और आपको चोट लग जाय ! शराबी सब स्वीकार कर लेता है; क्योंकि होश ही नहीं है विरोध करने का. वह गिरता है पूरी तरह गिर जाता है. गिरने से भी बचने का भाव नहीं होता. जो होश में है, वह बचेगा. गाड़ी उलटेगी तो तन जायगा, बचने की चेष्टा में लग जायगा. हड्डियां खिंच जायेंगी, सजग हो जायगा, तनी हुई हड्डियां चोट खा जायेंगी और टूट जायेंगी. शराबी रोज

सड़क पर गिरता है चोट नहीं खाता; पर आप गिरें तो मुश्किल में पड़ जायं. रोज बच्चे गिरते हैं और चोट नहीं खाते हैं; हम गिरें तो हड्डियां टूट जायं. बच्चे गिरने को भी स्वीकार कर लेते हैं तो शरीर उसमें भी राजी हो जाता है. और जब कोई गिरने को भी राजी हो जाय तो फिर चोट लगनी बहुत मुश्किल हो जायगी. उसके राजी होने के कारण विरोध बंद हो जाता है.

जिंदगी को स्वीकार के भाव से जो लेता है, जिंदगी उसे चोट नहीं पहुंचा पाती और जो जिंदगी को विरोध करता है, उसे जिंदगी बहुत चोट पहुंचा जाती है, बहुत घाव भर जाती है, बहुत अल्सर बना देती है. जिंदगी को जो पूरी तरह स्वीकार कर लेता है, जैसी जिंदगी आती है, द्वार खोलकर राजी हो जाता है, उसे जिंदगी कभी चोट नहीं पहुंचा पाती है.

इसलिए तीसरा प्रयोग है, स्वीकार का. क्योंकि परमात्मा को जानना है अगर तो जीवन को पूरी तरह स्वीकार करके ही तो जान सकेंगे. जिसे हम अस्वीकार करते हैं, उससे हमारी दुश्मनी हो जाती है. जिसका हम विरोध करते हैं, उसके लिए हमारे द्वार बंद हो जाते हैं. अस्वीकार से हमारा चित्त बंद —'क्लोज़्ड'— हो जाता है. फिर वो खुलता नहीं है. लेकिन जब हम स्वीकार कर लेते हैं तो सब खुल जाता है. उस खुले मन में ही अवतरण होता है, वही द्वार बनता है. इसलिये तीसरा चरण है तथाता—सब स्वीकृति.

बहने का भाव, मिट जाने का भाव, सर्व स्वीकृति का भाव— यह तीन ध्यान के चरण हैं. इन तीनों को हमने अलग-अलग करके देखा और समझा. अब हम इन तीनों भावनाओं का इकट्ठा प्रयोग ध्यान में करेंगे. इस इकट्ठे प्रयोग में 'बहने के', 'मिटने के', 'जो है, है'—इसके स्वीकार के गहरे परिणाम होंगे. शरीर गिर सकता है, शरीर झुक सकता है. उसे फिर सम्हालके बैठेंगे तो वहीं अटक जायेंगे. उसे सम्हालना नहीं है, गिरता हो गिर जाय. और घबड़ाना नहीं है कि चोट लग जायगी. चोट कभी भी न लगेगी. जब शरीर अपने आप गिरता है तो चोट नहीं लेता है. चोट का सवाल ही नहीं है. उसे सम्हालकर अगर बैठें तो फिर उतना 'रेजिस्टेंस', उतना विरोध शुरू हो जायगा—फिर उतनी स्वीकृति न रही. आंख से आंसू बह सकते हैं. मन एकदम हलका होगा, आंख के आंसू गिर जायेंगे. उनको भी रोक लिया तो तकलीफ हो जायगी. किसी को रोना भी आ सकता है तो उसे भी रोकने की जरूरत नहीं. उन पन्द्रह मिनटों के लिए, जो भी हो, हो. हमें उससे कोई बाधा नहीं. और कुछ भी निकल जायगा तो अच्छा है. भीतर बहुत शांति और हलकापन छूट जायगा. अब हम चौथे प्रयोग के लिए बैठें.

ध्यान के प्रयोग में बैठने के पहले और मैं चाहूंगा कि आप थोड़े दूर-दूर हट जायं, ताकि—अब पूरा ही छोड़ना पड़ेगा शरीर को, वह गिर भी सकता है—गिर जाय तो चिंता नहीं लेनी है. अगर उसे रोकने में लग गए तो वहीं अटक जायगा बिल्कुल. वह गिरता हो तो गिर जाय. इसलिए अब थोड़े फासले पर हट जायं. कुछ और मित्र आगे हैं, वो वहां जो खुली जगह है, वहां थोड़े हट जायं चुपचाप बिना आवाज किए, ताकि कोई गिरे तो किसी के ऊपर न गिर जाय, या किसी को अपने को सम्हालना न पड़े. और वहां कुछ मित्र पीछे बैठे हैं, अगर उनको प्रयोग न भी करना हो, तो कम से कम बातचीत न करें. वहां पीछे बात न करें और थोड़ा दूर हटके बैठें. कोई लेटना चाहे तो पहले ही चुपचाप किसी कोने में जाके लेट सकता है. आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें. और मैं थोड़ी देर सुझाव देता हूं. मेरे साथ अनुभव करें, ताकि शरीर पूरा-पूरा ढीला छूट जाय. मैं सुझाव देता हूं कि शरीर शिथिल हो रहा है और शरीर को शिथिल छोड़ते जायं, छोड़ते चले जायें. चाहे वह झुके तो झुक जाय, गिरे तो गिर जाय आप रोकके मत रखें. शरीर शिथिल हो रहा है, ऐसा भाव करें. शरीर शिथिल हो रहा है... अनुभव करें, छोड़ दें, जरा भी पकड़ें नहीं. शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है. जैसे उसमें कोई प्राण ही न हों. छोड़ें, जैसे नदी में बह गए थे, ऐसा शिथिल छोड़ दें. शरीर शिथिल होता जा रहा है. एक-एक अणु में ढीला और शिथिल होता जा रहा है. छोड़ते जायं ढीला, शरीर शिथिल हो रहा है. धीरे-धीरे शरीर बिल्कुल शिथिल हो जायगा, पता होगा जैसे है ही नहीं. छोड़ दें, झुकता हो झुक जाय, गिरता हो गिर जाय. शरीर बिल्कुल शिथिल होते-होते भीतर एक गहरी शांति छा जायगी. छोड़ दें शिथिलता में, जैसा नदी में छोड़ा था बह जाने को. एक-एक अंग ढीला छोड़ते जायं. भाव करते-करते शरीर बिल्कुल मिट्टी की तरह ढीला और शिथिल हो जायगा. गिर जानें दें शिथिलता की नदी में, बह जायं. शरीर शिथिल हो गया है. छोड़ दें, पकड़ें नहीं. जो होना हो, हो. शरीर पर आप अपनी पकड़ न रखें. शरीर शिथिल छोड़ें. श्वास शांत होती जा रही है. श्वास को भी छोड़ दें. भाव करें, अनुभव करें, श्वास शांत हो रही है. श्वास धीमी और शांत होती जा रही है. धीरे-धीरे जब मालूम पड़ेगा कि श्वास शांत हो रही है, तो ऐसा ही लगेगा कि मिटे जा रहे हैं, मिटे जा रहे हैं, मिटे जा रहे हैं. जैसा चिता पर मिट्टी का एक ढेर रह गया था. भाव करें, श्वास भी शांत हो रही है. श्वास शांत होती जा रही है. श्वास के शांत होते ही शरीर खो जायगा. पता ही न चलेगा कि शरीर है भी ! ऐसा लगेगा शरीर न रहा और हम रह गए हैं. छोड़ दें, श्वास को शांत होने दें. श्वास शांत हो गयी है. श्वास के शांत होने से शरीर और शिथिल

हो जायगा. शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें. श्वास को शांत हो जाने दें, वह धीरे-धीरे शांत होते-होते इतनी शांत हो जाती है कि पता नहीं चलता कि कब आई, कब गई ! उसकी पहचान ही बंद हो जाती है. जैसे चिता पर चढ़ गए थे और मिट गए थे, ऐसा ही श्वास को मिट जाने दें, शांत हो जाने दें. श्वास ही हमारा आधार बना है अहंकार का. उसे छोड़ दें ढीला,ढीला और ढीला, फिर वह खो जाय, खो जाय. श्वास शांत हो गई है. शरीर शिथिल हो गया है. और अब तीसरा कदम तथाता का. अब सब स्वीकार में डूब जायें. जो है, है. उसके साक्षी बने रहें. अब तथाता में ठहर जायें. पक्षी आवाज कर रहे हैं, हम सुन रहे हैं. धूप गरम है, हम अनुभव कर रहे हैं. रास्ते पर शोरगुल है, हम उसके ज्ञाता हैं. पैर में दर्द हो रहा है, हम जान रहे हैं. शरीर गिर रहा है, हम पहचान रहे हैं, रोक नहीं रहे हैं. हम कर्त्ता नहीं, सिर्फ ज्ञाता हैं. शरीर गिरे तो उसे भी जान रहे हैं. शरीर झुके तो उसे भी जान रहे हैं, आंख से आंसू बहने लगें तो उसे भी जान रहे हैं. जो भी हो रहा है, हो रहा है. हम रोकने वाले नहीं, करने वाले नहीं, सिर्फ जान रहे हैं, जान रहे हैं, जान रहे हैं. सब स्वीकार है और जो भी जान रहे हैं, उससे कोई इंकार नहीं है. अब सब स्वीकार में दस मिनट के लिए छोड़ दें अपने को और धीरे-धीरे सब शून्य हो जायगा, सब मिट जायगा, सब खो जायगा. उसी शून्य में परमात्मा के पदचाप पहली दफे सुनाई पड़ते हैं. उसका दिया जलता हुआ मालूम पड़ता है. उसकी वीणा का संगीत आता हुआ मालूम पड़ता है. छोड़ दें सब स्वीकार है और हम सारे जगत से एक होने के करीब पहुंच गए. अब हमें सब स्वीकार है. जो भी चारों तरफ है, इसे जानते रहें, स्वीकार करते रहें. हम सिर्फ द्रष्टा हैं, जान रहे हैं, जान रहे हैं. और धीरे-धीरे भीतर के पर्दे उठ जायेंगे और धीरे-धीरे भीतर के द्वार खुल जायेंगे. ऐसी शांति बरस पड़ेगी, जैसी कभी न जानी हो. ऐसा प्रकाश भीतर छा जायगा, जो अनजाना है, कभी पहचाना नहीं. ऐसे आनन्द के झरने भीतर फूट पड़ेंगे, जो रोयें-रोयें को पुलकित कर जायेंगे, नया कर जायेंगे. छोड़ दें. जान रहे हैं, पहचान रहें हैं. द्रष्टा मात्र हैं, कुछ नहीं कर रहे हैं. सब स्वीकार है. तथाता के भाव में, सर्व स्वीकृति में डूब जायें. जो है, जैसा है, है और हम राजी हैं. पक्षियों का शोर-गुल और सब कुछ जो भी हो रहा है, हम उसके जानने वाले साक्षी के अतिरिक्त और कोई भी नहीं हैं. न हमारा कोई विरोध है, न हमें कुछ बदलना है, न हमारी कुछ आकांक्षा है. अब दस मिनट के लिए साक्षी भाव से सर्व स्वीकार में डूब जायें. और जैसे-जैसे स्वीकृति बढ़ेगी, भीतर झरने फूटने लगेंगे शांति के, आनन्द के. नये-नये अनुभव भीतर प्रगट होने लगेंगे. छोड़ दें ... ... साक्षी भाव में, स्वीकार भाव में लीन हो जायें, अब मैं चुप हो जाता हूं. ... ...

साक्षी बने रहें... ... ... हवायें बह रही हैं, हम जान रहे हैं. पक्षी आवाज कर रहे हैं, हम जान रहे हैं. वृक्षों के पत्तों में शोर-गुल है, हम जान रहे हैं. हम सिर्फ जान रहे हैं और स्वीकार है. हम मात्र ज्ञाता, मात्र साक्षी हैं. देख रहे हैं, जान रहे हैं, पहचान रहे हैं. सब स्वीकृति से धीरे-धीरे भीतर शून्य हो जायगा. उसी शून्य के मंदिर में प्रभु का साक्षात्कार होता है. ..... जानते रहें, सुनते रहें, पहचानते रहें. साक्षी मात्र, सर्व स्वीकार से भरें, छोड़ दें, खो जायं, बह जायं—इस होने में, इस अस्तित्व में पूरी तरह लीन हो जायें. हम इसके ही हिस्से हैं. ये हवायें, ये सूरज, यह वृक्ष अलग नहीं हैं. हम सब एक हैं. पूरी तरह छोड़ दें. जानते रहें स्वीकार कर. मन धीरे-धीरे शून्य हो जायगा. उस शून्य मन में आनन्द के झरने फूट पड़ेंगे, आनंद की वीणा बजने लगेगी . वहां आनन्द का दिया जल जायेगा. बह जायं, मिट जायं, साक्षी मात्र रह जायं, स्वीकृति में खो जायं ... ... और मन एकदम गहरी शांति में उतर जायगा. गहरी से गहरी शांति भीतर प्रगट हो जायगी और रोआं-रोआं आनन्द से पुलकित हो जायगा. और एक प्रकाश भीतर भर जायगा, भीतर का सब अंधेरा टूट जायगा. इसी शांति में, इसी प्रकाश में, इसी आनन्द में प्रभु का अनुभव उपलब्ध होता है. चारों तरफ उसकी मौजूदगी प्रतीत होने लगती है. तब पक्षी, पक्षी नहीं रह जाते; पौधे, पौधे नहीं रह जाते; तब हवायें, हवायें नहीं रह जातीं; तब सूरज की गरमी, सूरज की गरमी नहीं रह जाती है. तब सब उसी परमात्मा का नृत्य हो जाता है. उसी के पदचाप सुनाई पड़ने लगते हैं. सर्व स्वीकार है और साक्षी मात्र रह जायं, जो भी हो रहा है, हम राजी हैं. हमारा कोई विरोध नहीं. जैसे एक बूंद सागर में खो जाती है, ऐसे हम सर्वस्व खो जाने को राजी हैं. जैसे कोई नदी सागर में लीन हो जाती है, ऐसे हम इस विराट के सागर में खोने को राजी हैं. खो जायं ... बह जायं ... मिट जायं ... सर्व स्वीकार कर लें और फिर देखें, कैसी आनन्द की वीणा बजने लगती है ! देखें, कैसे हजार-हजार दिये परमात्मा के प्रकाश के जल जाते हैं ! खो गए हैं, मिट गए हैं, लीन हो गए हैं, एक हो गए हैं सबके साथ. मात्र गवाह हैं ... ... मन बड़ी शीतलता और आनन्द से भर गया है. मन शांत हो गया है, मन शून्य हो गया है. साक्षी रहें और सब स्वीकार कर लें... ... आपके आनंद में वृक्ष भी आनन्दित, हवायें भी आनन्दित, सूरज भी आनन्दित. सिर्फ जानते रहें .. ... स्वीकार कर लें ... ... इस सब में खो जायं . ...

इसी शांत, आनन्द से भरे हुए चित्त में प्रभु की मौजूदगी का पता चलता है. वह चारों तरफ अनुभव होने लगता है— सूरज की किरणें उसकी

किरणें हो जाती हैं; हवाओं के झोंके उसके झोंके हो जाते हैं; वृक्षों पर पक्षियों के गीत उसके गीत हो जाते हैं; पक्षियों के शोर-गुल में उसकी शोर-गुल और पुकार मिल जाती है. उन सब रूप में उसकी मौजूदगी को अनुभव करें, चारों तरफ वही मौजूद है—सब में वही मौजूद है. धीरे-धीरे गहरी श्वास लें, प्रत्येक श्वास में वही मौजूद है. वही भीतर जाता है, वही बाहर आता है. आंख बन्द करके भी वही मौजूद था, आंख खुलते भी चारों तरफ वही मौजूद है. जो भीतर जाता है, उसे बाहर भी अनुभव करें. धीरे से गहरी श्वास लें. प्रत्येक श्वास में गहरी शांति, बहुत आनन्द मालूम होगा. जो भी हो रहा है चारों ओर, उसके द्रष्टा मात्र रह गए हैं. साक्षी होते ही प्राण शांत हो जाते हैं, आत्मा शून्य हो जाती है. साक्षी होते ही वे द्वार खुल जाते हैं, जो प्रभु के मंदिर के हैं. साक्षी रह जायं, बस, साक्षी रह जायं . ... मन शांत हो गया है, शांति के फूल खिल गए हैं. मन आनन्दित हो गया है, आनन्द के झरने फूट पड़े हैं. मन आलोकित हो गया है, मन प्रकाश से भर गया है, परमात्मा के बहुत से दिए जल गए हैं . ... धीरे धीरे दो-चार गहरी श्वास लें फिर धीरे-धीरे आंख खोलें. अगर आंख न खुले, तो दोनों आंख पर हाथ रख लें फिर धीरे से आंख खोलें. जो लोग लेटे हैं या गिर गए हैं, वह थोड़ी गहरी श्वास लें फिर बहुत धीरे आहिस्ता से उठें. जल्दी न करें, धीरे उठें, झटके से नहीं. और इस प्रयोग को रात्रि सोते समय करें, फिर सो जायं, ताकि कल सुबह जब यहां आयें तब रात भर की गहरी शांति से और गहरे प्रयोग में उतर सकें. बिस्तर पर इस प्रयोग को करें, ताकि पूरी रात भीतर मन की गहराइयों में ध्यान की धारा बहती रहे और वही शांति, वही आनन्द हमारे भीतर सरकता रहे.

एक छोटी-सी सूचना ख्याल में रख लें. पिछले तीन दिनों से आपसे कुछ बोलकर बात कर रहा हूं; लेकिन बहुत कुछ है, जो बोलकर नहीं कहा जा सकता है. बहुत कुछ है, जो मौन में ही कहा जा सकता है. अगर कोई भी मौन होने को राजी हो तो भीतर से भी बहुत कुछ दिया जा सकता है, कहा जा सकता है. तो आज दोपहर साढ़े तीन से साढ़े चार मौन प्रवचन होगा. मैं चुपचाप घंटे भर यहां बैठा रहूंगा. आप भी घंटे भर आकर चुपचाप बैठे रहेंगे और प्रतीक्षा भर करेंगे कि कुछ भीतर आ जाय, आ जाय, आ जाय. कुछ भी नहीं करेंगे. आंख बन्द करके लेटना होगा—लेटेंगे; बैठना होगा—बैठेंगे; वृक्ष से टिकना होगा—टिकेंगे. जो जिसकी मौज हो, वैसा चुपचाप आकर साढ़े तीन बजे के पांच मिनट पहले ही यहां पहुंच जायं, ताकि पीछे कोई बाधा न हो. एक घंटे मैं भी आपके पास मौन बैठा रहूंगा. देखें, जो शब्द

से नहीं कहा जा सकता है, हो सकता है, मौन से आप तक पहुंच जाय. उस बीच किसी को भी ऐसा लगे कि मेरे पास आना है, तो वह दो मिनट के लिए मेरे पास आकर बैठ जायगा. फिर चुपचाप उठकर अपनी जगह चला जायगा. सुबह की हमारी बैठक पूरी हुई.

●

इशारा हो गया

बड़ा अजीब-सा है यह अनुभव— यह प्रयोग !
बड़ा कठिन लगता है यह संयोग.
लुटते चले जा रहे हैं निरंतर—सब कुछ लुटा जा रहा है.
पैर टिक भी न पाये थे जमीं पर—अभी तक
कि उड़ने का— बहने का इशारा हो गया !

समझ में नहीं आता—
कि अधर में लटके रह गए हैं हम ?
जमीं पर पैर उलझ भी गए—फंस भी गए हैं हम.
गुत्थियां भी हैं उलझी हुईं बहुत—जकड़ी हुईं भी.
सुलझाना भी चाहूं तो कैसे ...? हे प्रभो !
और खोलना भी चाहूं, तो खोल न पाऊं
क्योंकि उड़ने का— बहने का इशारा हो गया !

कुछ था भी न पास—और करना भी कुछ था
खुद संसार में ही रह—'स्व'-प्राण परमात्मा को लिए.
फिर, फंसता ही गया—उलझता ही गया.
लेकिन, लुटता भी गया—गंवाता भी गया
क्योंकि उड़ने का—बहने का इशारा हो गया !

जमीं छोड़, 'गर भागना नहीं है—संसार से
तो तनिक-सी मुक्त जगह भी दे दे—पैरों को, हे प्रभो !
फिर चाहूं, कि लुटता ही रहूं—लुटाता भी रहूं.
ऊंचाइयों तक उड़ता भी रहूं—
गहराइयों तक बहता भी रहूं
कि उड़ने का—बहने का इशारा हो गया !

[भगवान श्री को स्वामी दयाल भारती (जबलपुर) द्वारा लिखे गये एक पद्यात्मक पत्र से]

अमृत-पत्र

प्यारी मौनू,

प्रेम .

सत्य में प्रवेश के दो द्वार हैं .

द्वार भी एक सत्य है, एक मिथ्या.

निश्चय ही मिथ्या द्वार [FALSE DOOR] से तो सत्य में प्रवेश कैसे हो सकता है ?

लेकिन पहले वही मिलता है.

वह पहले ही हो सकता है. बाद तो उसके होने का प्रश्न ही नहीं है.

उसमें भटकना भी अनिवार्य है.

क्योंकि उसमें भटकने से ही उससे मुक्ति भी हो सकती है. मिथ्या को, मिथ्या है, ऐसा जान लेना ही उससे मुक्त हो जाना है.

और ऐसा ज्ञान सत्य-द्वार पर लाकर खड़ा कर देता है.

मिथ्या द्वार से बचकर भी निकला जा सकता है.

उसकी ओर आंखें मूंदकर भी निकला जा सकता है.

लेकिन, ऐसा करने वाला व्यक्ति उससे कभी भी मुक्त नहीं हो पाता है.

वह आंखों में भय की पट्टियां बांधे सदा उसी के आस-पास घूमता रहता है.

और सत्य द्वार पर तो वह कभी पहुंच ही नहीं सकता है.

क्योंकि उस पर पहुंचने की अनिवार्य शर्त मिथ्या-द्वार से मुक्त हो जाना है.

मां योग क्रांति (मौनू) को भगवान श्री द्वारा लिखा गया एक पत्र

मिथ्या को मिथ्या जाने बिना सत्य को सत्य की भांति जानना भी संभव नहीं है.

मिथ्या-द्वार का नाम है : विचार या शब्द या शास्त्र.

सत्य-द्वार का नाम है : निर्विचार या निःशब्द या शून्य.

या, नाम कोई और भी हो सकते हैं.

लेकिन द्वार दो ही हैं.

मिथ्या-द्वार से आंख चुराकर निकल जाने की पद्धति का नाम है : विश्वास.

विश्वास मिथ्या-द्वार भी नहीं है.

वह द्वार तो है ही नहीं—वह द्वार का धोका तक भी नहीं है.

इससे उससे मुक्त होना कठिन है.

धोखे से मुक्त हुआ जा सकता है, लेकिन जो धोखा तक भी नहीं है, उससे मुक्त होना भी अति कठिन है.

इसीलिए, धर्मों ने और धर्म-गुरुओं ने उसे ही अपनी आधार-शिला बनाया है.

मनुष्य की दासता की बेड़ियों में उससे ज्यादा मजबूत बेड़ी और कोई भी नहीं है.

इसलिए मैं कहता हूं : विश्वास से बचो. और इसका क्या अर्थ है ? इसका अर्थ है कि विचार से मत बचो. विचार से बचे कि विश्वास आया. और विचार में गये कि विश्वास गया. क्योंकि विचार में बिना संदेह के जाया ही नहीं जा सकता है.

और मजा यह है कि विचार वास्तविक द्वार नहीं है.

वस्तुतः द्वार तो एक ही है. वह है : निर्विचार.

विचार तो केवल द्वार का आभास-मात्र है.

लेकिन उससे गुजरना आवश्यक है.

आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है.

और उपादेय भी.

क्योंकि विचार किए बिना कोई कभी निर्विचार नहीं हो सकता है.

विचार के पूर्व जो है वह अविचार है.

निर्विचार विचार के बाद है.

और अविचार और निर्विचार एक-से दीखते हैं, लेकिन उनमें आकाश-पाताल का अंतर है.

अविचार है अंधापन.

और निर्विचार है आंखों की उपलब्धि.

अविचार से निर्विचार तक की यात्रा का उपकरण ही विचार है.

शायद इसीलिए विचार द्वार दीखता है.

और कुछ हैं जो उसे द्वार मानकर उसमें ही खो जाते हैं.

उससे गुजरना है, लेकिन उसमें ही ठहर नहीं जाना है.

औषधि है बीमारी से जूझने को.

लेकिन औषधि भोजन नहीं है.

बीमारी जाये और औषधि न छूटे तो वह फिर स्वयं ही बीमारी बन जाती है.

और बीमारी की औषधि है.

लेकिन औषधि छुड़ाने के लिए कौन-सी औषधि है ?

और हो भी तो फिर वह पकड़ जायगी.

और फिर अंत कहां है ?

विचार अविचार से मुक्त करने को है.

लेकिन उसे अविचार के स्थान पर नहीं बैठा लेना है.

एक कांटा दूसरे कांटे से निकालते हैं और दूसरा कांटा भी वहीं फेंक देते हैं, जहां कि पहला फेंक दिया था.

और तब कचरा-घर में पड़े वे दोनों कांटे एक-से हो जाते हैं.

उनमें से एक अच्छा और दूसरा बुरा नहीं होता है.

अब तो उन्हें पहचाना भी नहीं जा सकता है कि कौन, कौन है ?

लेकिन जब एक कांटा पैर में गड़ा था और दूसरा उसे निकालता था, तो एक शत्रु था और दूसरा मित्र था.

लेकिन अब वे दोनों कांटे हैं.

और ध्यान रहे कि दूसरा भी पैर में गड़ने में उतना ही समर्थ है जितना कि पहला था.

इसलिए अब दूसरे से भी सावधानी आवश्यक है.

अविचार में बंधे लोग हैं.

और विचार में बंधे हुए लोग भी हैं.

विचार के बंधन में एक और नया खतरा है.

अविचार का बंधन भोला-भाला था.

विचार का बंधन चालाक है.

अविचार मात्र बंधन था.

विचार का बंधन स्वर्ण-बंधन है.

और निश्चय ही सोने की जंजीर तोड़ने में कठिनाई पड़ती है, क्योंकि वे सोने की हैं !

मन उन्हें तोड़ना भी चाहता है और नहीं भी तोड़ना चाहता है.

जंजीरें हैं इसलिए तोड़ना चाहता है.

सोने की हैं, इसलिए नहीं तोड़ना चाहता है.

जंजीरों में यह सोना कहां से आ जाता है ?

यह सोना आता है, इस भ्रम से कि विचार मेरे हैं.

यह स्वर्ण ढलता है अहंकार के कारखाने में.

वस्तुतः तो अहंकार ही ढलकर सोने की जंजीरें बन जाता है.

विचार करने वाला यदि अहंकार से सावधान न रहा तो विचार से कभी ऊपर नहीं उठ पाता है.

विचारक की बीमारी अहंकार है.

फिर वह अहंकार विचार को ही सत्य का द्वार मान लेता है, क्योंकि निर्विचार में विचार ही नहीं मरता, अहंकार भी मरता है.

अहंकार विचारातीत यात्रा से इसीलिए सदा इंकार करता है.

लेकिन यदि विचार द्वार नहीं है तो वह द्वार जैसा भासता क्यों है ?

विचार द्वार दीखता है क्योंकि मनुष्य का मन और कुछ करने में साधारणतः समर्थ ही नहीं है.

मनुष्य विचार कर सकता है, इसीलिए विचार को द्वार मान लेता है.

विचार की साफ-सुथरी चौखटें भी उसके द्वार होने का भ्रम पैदा करती हैं.

विचार की शृंखलाबद्ध प्रक्रिया भी कहीं ले जाती हुई मालूम होती है.

विचार की सीमाएं हैं. धारणायें असीम हो भी नहीं सकती हैं. सीमायें सुरक्षित करती हैं. और मनुष्य का मन सुरक्षा की अति कामना से भरा हुआ है.

विचार सुरक्षा का आश्वासन देता है.

क्योंकि, वह परिचित है.

क्योंकि, वह जाना-पहचाना है.

और मनुष्य अपरिचित में, अनजान में, अज्ञात में जाने से भयभीत होता है, इसलिए सदा परिचित लीक को पकड़े रहना चाहता है. फिर जिसे पकड़े रहना चाहता है उसे द्वार और मार्ग भी माने रहना आवश्यक है. अन्यथा पकड़ ढीली हो सकती है और अपरिचित में भटक जाने का खतरा खड़ा हो सकता है.

अहंकार विचार का केन्द्र है.

'मैं' जान सकता हूं, यह भ्रम ही तो विचार का आधार है. और जानना है तो विचार के अतिरिक्त और किया भी क्या जा सकता है ?

विचार—विचार और विचार और अंत में ज्ञान ऐसी हमारे अहंकार की धारणा है.

विचार सीढ़ी है. ज्ञान पहुंचना है. ऐसी हमारे अहंकार की तर्क सरणी है. अहंकार कहता है: पहुंचना है तो विचार की सीढ़ी पकड़ो, क्योंकि सीढ़ी के बिना पहुंचना कैसे हो सकता है ?

लेकिन जो विचार अज्ञान में प्रारंभ होता है, ज्ञान में ले कैसे जा सकता है ?

अज्ञान जिसका प्रथम चरण है, ज्ञान उसकी अंतिम निष्पत्ति कैसे हो सकती है ?

और अज्ञान ही तो विचार करेगा न ?
और अज्ञान क्या विचार कर सकता है ?
अज्ञान ज्ञान कैसे बन सकता है ?
अज्ञान के विचार का मूल्य ही क्या है ?

फिर अहंकार स्वयं अज्ञान का पुंजीभूत रूप है.
वह ज्ञान तक नहीं जा सकता है.
ज्ञान के निकट उसकी उसी भांति गति नहीं है, जैसे अंधकार की प्रकाश के निकट नहीं है.

तब अहंकार एक मिथ्या ज्ञान की ईजाद करता है.
उधार ज्ञान को ही वह ज्ञान मान लेता है.
यह उधार ज्ञान ही उसकी संपदा बन जाता है.
वह स्वयं असत्य है और इसलिए असत्य ही उसका आधार बन सकता है.
अहंकार प्रज्ञा की पूर्ति पांडित्य से ही कर लेता है.
विचार के नाम पर फिर यही उधार और बासा कार्य चलता है.
क्या हमारा सारा ज्ञान बासा और उधार नहीं है ?
क्या हमारे सारे विचार उसी उधार और बासे में नहीं जीते हैं ?
विचार भी क्या उधार और बासे में निवास करने वाले गुबरीले नहीं हैं ?
विचार मौलिक (ORIGINAL) हो भी नहीं सकता है.
वह तो सदा ही बासा है.
क्योंकि, वह सदा ही बीते से—जा चुके से संबंधित है.
वह सदा ही अतीत है.
वह जीवंत तो कभी भी नहीं है.
वह हो चुके की स्मृति पर छूट गई रेखा ही है न ?
वस्तुतः विचार स्मृति (MEMORY) है.
और स्मृति मृत के पदचिह्नों का नाम है.

विचार करो—यानी क्या करो ?

विचार करो यानी जुगाली करो.

जो जानते ही हो उसे ही फिर-फिर उल्टाओ-पल्टाओ.

उसी के नये संयोग बनाओ—नये जोड़ बनाओ.

लेकिन वे सभी संयोग वस्तुतः पुराने ही होंगे.

उनकी सब ईंटें पुरानी होंगी.

उनका सब कुछ पुराना ही होगा.

उनमें सच ही नया तो कुछ हो ही नहीं सकता है.

विचार का नये से—नवीन से कभी भी कोई संपर्क नहीं हो पाता है.

वह उसे ही फिर से चबाता है जो कि पूर्व ही चबाया जा चुका है.

इसीलिए तथाकथित विचारकों को देखकर मुझे सदा जुगाली करती भैंसों का ही स्मरण आता है.

भैंसें भी बड़ी विचारक मालूम पड़ती हैं!

विचार करो अर्थात् ज्ञात (KNOWN) को अज्ञात (UNKNOWN) पर फैलाओ. अज्ञात को ज्ञात के वस्त्र पहनाओ. लेकिन अज्ञात तो ज्ञात ही नहीं है, इसलिए उस पर न ज्ञात को फैलाया ही जा सकता है और न उसे ज्ञात के वस्त्र ही पहनाये जा सकते हैं.

ज्ञात से अज्ञात की ओर कोई मार्ग ही नहीं जाता है.

ज्ञात अज्ञात के लिए द्वार नहीं हो सकता है.

इसीलिए विचार सत्य का मिथ्या-द्वार है.

अज्ञात को आने देना है तो ज्ञात को मिटना होता है.

ज्ञात मिटे तो ही अज्ञात का द्वार खुलता है.

ज्ञात ही बाधा है.

ज्ञात ही अवरोध है.

और विचार की श्वासें ज्ञात से ही बंधी हैं.

ज्ञात गया कि विचार भी गया.

क्योंकि अज्ञात का तो विचार हो ही नहीं सकता है.

वह तो तभी आता है, जब विचार द्वार दे देता है.

और मनुष्य है कि विचार को ही द्वार बनाना चाहता है.

विचार द्वार नहीं बन सकता, लेकिन द्वार दे सकता है.

वह हट जाये तो द्वार खुल जाता है.

अज्ञात कभी ज्ञात के वस्त्र नहीं पहन सकता है.

इसीलिए सत्य शास्त्र के वस्त्र नहीं पहन पाता है.

इसीलिए सत्य शब्द के वस्त्र नहीं पहन पाता है.

वस्तुतः उसे किसी प्रकार के वस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं है.

वस्त्रों की आवश्यकता तो सिर्फ असत्य को ही है.

सत्य तो जैसा है, वैसा ही होने में आनंदित है.

वह तो अपनी नग्नता में ही परम सुन्दर है.

ज्ञात के वस्त्रों में, अज्ञात नहीं, ज्ञात की ही बुझी हुई राख होती है.

और सत्य की अग्नि का शब्दों की राख से संबंध ही क्या हो सकता है ?

अग्नि का ही राख से क्या संबंध है ?

अग्नि राख नहीं है.

न ही राख अग्नि है.

हालांकि जब अग्नि जा चुकी होती है, तब राख ही शेष रह जाती है.

और इससे ही भ्रम पैदा होता है.

और नासमझ अग्नि की स्मृति में राख को ही सहेजकर रख लेते हैं.

ऐसी ही राख तो शास्त्रों में सुरक्षित है.

और ऐसी ही राख से तो स्मृति स्वयं को भरे रहती है.

और ऐसी ही राख तो हमारा तथाकथित ज्ञान है.

ज्ञान की राख से जिनकी आंखें भरी हैं, वे ज्ञान की अग्नि से वंचित ही रह जाते हैं.

विचारों की राख सत्य के प्रति अंधा ही कर देती है.

सत्य तो सदा है—सब जगह है.

जो है, वह सत्य ही है.

लेकिन हम उसे बाल-बाल चूकते चले जाते हैं.

विचार का द्वार ही हमें उससे चुका देता है.

सत्य तो जहां है वहीं है.

सत्य तो जो है वही है.

लेकिन, हमारा चित्त वहां ही नहीं है, जहां हम हैं.

और हमारा चित्त वही नहीं है, जो हम हैं.

स्वयं और स्वयं के चित्त के बीच की यह दूरी विचार पैदा करता है.

चित्त विचार में होता है तो हम वहीं नहीं रह जाते हैं, जहां कि हम हैं.

चित्त विचार में होता है तो हम वही नहीं रह जाते हैं, जो कि हम हैं.

एक अर्थ में वहीं होते हैं जहां हैं, वहीं होते हैं जो हैं, लेकिन एक अर्थ में कहीं दूर चले जाते हैं.

जैसे कोई स्वप्न में वहां से दूर चला जाता है, जहां है और फिर भी वहीं होता है.

ऐसे ही विचार में भी हम स्वयं से ही दूर चले जाते हैं.

इसलिए जो है, विचार उसे जानने का द्वार कभी भी नहीं हो सकता है.

विचार जागते हुए ही स्वप्न देखने की एक प्रक्रिया है.

जागते जो विचार है, सोते वही स्वप्न बन जाता है.

विचार शब्द-प्रतिमाओं से चलता है, स्वप्न प्रतिमा—शब्दों से.

स्वप्न आदिम विचार है.

विचार विकसित स्वप्न है.

इसीलिए, जब तक विचार चलते रहते हैं, तब तक स्वप्नों से मुक्ति नहीं होती है.

लेकिन जैसे ही इधर विचार गए, वैसे ही उधर स्वप्न भी खो जाते हैं. वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं.

अब स्वप्न सत्य को जानने का द्वार कैसे हो सकता है?

सत्य जानना है तो ठहरो—विचार को, स्वप्न को छोड़ो. रुको और देखो.

सोचो मत—देखो.

फूल खिले हैं.

तू उनके पास खड़ी है.

लेकिन, क्या सच ही तू उनके पास खड़ी है ?

नहीं—तेरी आंखें तो कहती हैं कि तू कहीं दूर चली गई है.

तेरा पूरा होना कह रहा है कि तू वहां नहीं है, जहां कि दिखाई पड़ रही है.

फूल खिले हैं जरूर, लेकिन तू उनसे चूक गई है.

वे खिलकर भी तेरे लिए नहीं खिल पाये हैं.

तू विचार में है और इसलिए फूलों में नहीं हो पा रही है.

और हो सकता है कि तू फूलों के ही विचार में हो.

लेकिन फूलों का विचार, या विचारों के फूल निश्चय ही वे फूल तो नहीं ही हैं जो तेरे सामने खिले हैं.

फूल तेरे सामने हैं लेकिन तू फूलों के सामने नहीं है.

और यही दुर्घटना सत्य के साथ भी घट रही है.

आकाश में सफेद बदलियां तैर रही हैं.

तू घर के द्वार पर खड़ी है—शरीर से, लेकिन मन से घर में अनुपस्थित है.

और शरीर की उपस्थिति तो कोई उपस्थिति नहीं है ?

बदलियां पहले भी आई हैं, लेकिन तू घर में थी; पर विचार में थी, इसलिए बदलियों ने तुझे बहुत खोजा, लेकिन वे तुझे पा नहीं सकीं.

मनुष्य को छोड़कर शरीर के पाने को और कोई पाना नहीं मानता है.

बदलियां आज भी आई हैं, लेकिन तू फिर घर में नहीं है.

मनुष्य को उसके घर में पाना सदा ही कठिन है.

ऐसे वह सदा ही घर में बैठा दिखाई पड़ता है.

बदलियां फिर भी आयेंगी. वे थकती नहीं हैं, न निराश ही होती हैं. वे सदा ही आती रहेंगी. **लेकिन सवाल उनके आने का तो नहीं है. सवाल तो तेरे घर में होने का है !**

और यही सवाल सत्य के साथ भी है.

सत्य तो सदा द्वार पर खड़ा है, लेकिन क्या तू घर में है ?

सत्य तो उपस्थित है लेकिन क्या तू भी उपस्थित है ?

विचार व्यक्ति को अनुपस्थित करते हैं.

विचार अर्थात् अनुपस्थिति.

फिर चाहे हों फूल, चाहे बदलियां, चाहे सागर का गर्जन सभी उपस्थिति मांगते हैं.

सत्य भी उपस्थिति मांगता है.

और फिर फूलों में बस फूल ही तो नहीं हैं.

और बदलियों में बदलियां ही तो नहीं हैं.

हमारी चेतना उपस्थित हो तो वहां भी वही है जो सत्य है.

चेतना जहां अनुपस्थित (ABSENT) **है, वहीं असत्य है.**
चेतना जहां उपस्थित (PRESENT) **है, वहीं सत्य है.**

लेकिन विचार में भटक जाने की आदमी की गहरी आदत है. और यही आदत उसे असत्य जीने को मजबूर कर देती है.

और विचार दावा करता है, सत्य को जानने का.

निश्चय ही यह झूठा दावा ही उसकी दुकान का प्राण है.

इस दावे से ही विचार जीता है.

अन्यथा उसके प्राण क्षण भर में निकल जा सकते हैं.

निर्विचार का कोई दावा नहीं है.

वह तो बस प्रतीक्षा करता है.

विचार में जाकर अंततः तो ज्ञात होगा ही न कि विचार कहीं नहीं पहुंचाता है.

विचार तो बस गोल-गोल घेरों में घूमता रहता है.

विचार बंधे रास्तों पर निरंतर पुनरावृत्ति है.

क्या तूने कभी ध्यान नहीं दिया है कि वे ही विचार बार-बार एक नियत विधि से चित्त को घेरते रहते हैं ?

विचार की गति कोल्हू के बैलों की भांति है.

विचार में नया क्या है ?

विचार सदा पुराना है.

लेकिन मनुष्य उनमें ही मूच्छित भटकता रहता है.

उन्हीं पथों पर बार-बार.

एक ही वृत्त में—जैसे घड़ी के कांटे घूमते हैं—टिक्-टॉक टिक्-टॉक, टिक्-टॉक.

आह ! विचार भी एक यंत्र है.

बस घड़ी जैसा ही.

घड़ी के कांटे भी थकते नहीं हैं. शायद वे सोचते हैं कि हर बार वे नई जगह हैं. और वे निश्चित ही सोचते होंगे कि इस भांति निरंतर चल-चलके वे जरूर कहीं पहुंच रहे हैं !

और वे कांटे कहीं भी पहुंचते नहीं हैं.

वे बस घूमते रहते हैं.

बंधी पटरी पर— बंधी लीक में— बंधे वृत्त में जो भी चलता है, वह कहीं भी नहीं पहुंचता है.

लेकिन, चलने से—चलते रहने से पहुंचने का भ्रम भी नहीं टूटता है.

एक बार किसी विचारक की घड़ी के दोनों कांटे टूट गए थे. लेकिन उसका स्वचालित यंत्र ठीक था और वह चलती ही रही—कांटे टूटने से वह रुकी नहीं; क्योंकि कांटों के चलने से तो उसके चलने का कोई सम्बन्ध ही न था.

यद्यपि कांटे सदा यही सोचते रहे थे कि उन्हें चलाने को ही घड़ी चलती है !

विचार चलाने के लिए ही चित्त नहीं है.

चित्त का यंत्र चलता है इसलिए विचार के कांटे भी घूमते रहते हैं.

लेकिन विचार यही सोचते हैं कि उन्हें चलाने को ही सारी व्यवस्था है !

विचार के बिना भी चित्त हो सकता है.

कांटों के बिना भी घड़ी हो सकती है.

लेकिन कांटे यह नहीं मान सकते हैं.

विचार भी यह नहीं मान सकते हैं.

वह विचारक फिर उस घड़ी से बड़ी मुश्किल में पड़ गया था. घड़ी दिन रात करती रहती—टिक्-टॉक,टिक्-टॉक, टिक्-टॉक. यह बड़ी उबाने वाली बात थी. कांटे थे तो उनके कहीं पहुंचने के भ्रम में यह टिक्-टॉक भी सुन ली जाती थी.

लेकिन अब तो इस टिक्-टाक—टिक्-टाक—टिक्-टॉक को सुनना बहुत पागल करने वाला क्रम हो गया था.

अब वह घड़ी बड़ी घबड़ाने वाली थी.

टिक्-टॉक—टिक्-टॉक—टिक्-टॉक.

और अब उसमें कुछ बजता भी नहीं था.

टिक्-टॉक—टिक्-टॉक—टिक्-टॉक.

आह ! अब तू ही सोच कि यदि ऐसी घड़ी के साथ चौबीस घंटे रहना पड़े तो क्या दशा हो ?

अंततः उस विचारक ने वह घड़ी पत्थर पर पटक कर फोड़ दी.

लेकिन, शायद चित्त की घड़ी को वह अब तक अपनी छाती से ही बांधे होगा, क्योंकि विचार के कांटे कहीं पहुंचाने का आश्वासन देते ही रहते हैं.

विचार के कांटे हट जाने पर चित्त की घड़ी भी फोड़ देनी पड़ती है.

विचार के कारण ही चित्त की उबाने वाली—टिक्-टॉक, टिक्-टॉक—सुन ली जाती है.

विचार के कारण भ्रम होता है कि कहीं पहुंच रहे हैं.

लेकिन न कहीं घड़ी के कांटे कहीं जाते हैं और न विचार ही कहीं जाते हैं.

विचार का द्वार मिथ्याद्वार है.

चित्त (MIND) का द्वार ही मिथ्या द्वार है.

निर्विचार (NO-MIND) के अतिरिक्त सत्य का और कोई सत्य-द्वार नहीं है.

लेकिन विचार के मिथ्या-द्वार की भी एक सार्थकता है कि उससे ऊबे बिना कोई निर्विचार के द्वार पर नहीं पहुंचता है.

इसलिए विचार से गुजरने की पीड़ा अनिवार्य है.

वह प्रसव पीड़ा है.

लेकिन यदि प्रसव-पीड़ा को ही कोई जीवन बनाये और उसे जन्म देना ही भूल जाए जिसके जन्म के लिए ही प्रसव-पीड़ा सार्थक हो सकती थी, तो ?

विचारक ऐसी ही जीवन बन गई प्रसव-पीड़ा में पड़े रहते हैं.

विचार अनिवार्य है.

लेकिन उससे मुक्त होना और भी अनिवार्य है.

विचार, विचार से मुक्त करे तो ही सार्थक है.

●

फूल, फूल और फूल

- साधना में हम जाना भी चाहते हैं और नहीं भी जाना चाहते. तब दुविधा हमारे प्राण ले लेती है और हम अकारण परेशान होते हैं. उनको परमात्मा को खोजना भी है और बचना भी है कि कहीं मिल न जाय.
- खोजना और मांगना दो अलग बातें हैं, जो खोजना नहीं चाहता है, वही मांगता है.
- मांगने में दूसरे का ध्यान रखना पड़ता है जिससे मिलेगा. और खोजने में अपने पर ध्यान रखना पड़ता है जिसको मिलेगा.
- एक दिन सन्देह पर भी सन्देह हो जाता है, उसी दिन श्रद्धा की शुरुआत होती है.
- आम तौर से साधक जब खोज पर निकलता है तो उसकी खोज सत्य की नहीं होती है. आम तौर से आनंद की होती है. वह कहता है सत्य की खोज पर निकला हूं पर खोज उसकी आनंद की होती है.
- 'मैं हूं' इसमें दो चीजें हैं—'मैं' तो अहंकार है और 'हूं' अस्मिता है—होने का बोध. 'मैं' तो मिट जायगा पांचवें शरीर में, सिर्फ 'हूं' रह जायगा. अस्मिता रह जायगी.

—संकलन : **स्वामी अगेह भारती**

●

पंच नमोकार सूत्र :

नमो अरिहंताणं.
नमो सिद्धाणं.
नमो आयरियाणं.
नमो उवज्झायाणं.
नमो लोए सव्वसाहुणं.

एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो.
मंगलाणं च सव्वेसिं, पठमं हवइ मंगलं.

अर्थ : अरिहन्तों (अर्हतों) को नमस्कार.
सिद्धों को नमस्कार.
आचार्यों को नमस्कार.
उपाध्यायों को नमस्कार.
लोकों में सर्व साधुओं को नमस्कार.

ये पांच नमस्कार सर्व पापों के नाशक हैं
तथा सर्व मंगलों में प्रथम मंगल हैं.

प्रस्तुत मंत्र पर भगवान श्री रजनीश द्वारा पर्युषण व्याख्यानमाला, बंबई में 'महावीर-वाणी' के अंतर्गत अगम्य विवेचन किया गया. ये प्रवचन १८ दिवसों तक हुए. प्रस्तुत प्रवचन इसी क्रम का पहला प्रवचन है. शीघ्र ही इन प्रवचनों की बृहत् पुस्तक 'महावीर-वाणी' बंबई जीवन जागृति केन्द्र द्वारा प्रकाशित होगी. प्रस्तुत प्रवचन इस बृहत् पुस्तक के परिचय के रूप में यहां प्रकाशित किया गया है.

दिव्य लोक की कुंजी

● संकलन : स्वामी योग चिन्मय, बम्बई

जैसे सुबह सूरज निकले, और कोई पक्षी आकाश में उड़ने के पहले अपने घोंसले के पास परों को तौले, सोचे, साहस जुटाये या जैसे कोई नदी सागर में गिरने के करीब हो, स्वयं को खोने के निकट पीछे लौटकर देखे,सोचे क्षण भर. ऐसे ही महावीर की वाणी में प्रवेश के पहले दो क्षण सोच लेना जरूरी है.

जैसे पर्वतों में हिमालय है या शिखरों में गौरीशंकर, वैसे ही व्यक्तियों में महावीर हैं. बड़ी है चढ़ाई. जमीन पर खड़े होकर भी गौरीशंकर के हिमाच्छादित शिखर को देखा जा सकता है. लेकिन जिन्हें चढ़ाई करनी हो और शिखर पर पहुंचकर ही शिखर को देखना हो, उन्हें बड़ी तैयारी की जरूरत है. दूर से भी देख सकते हैं महावीर को, लेकिन दूर से जो परिचय होता है, वह वास्तविक परिचय नहीं है. महावीर में तो छलांग लगाकर ही वास्तविक परिचय पाया जा सकता है. उस छलांग के पहले जो जरूरी है, वे बातें कुछ आपसे कहूं.

बहुत बार ऐसा होता है कि हमारे हाथ में निष्पत्तियां रह जाती हैं, 'कंक्लूजन' रह जाते हैं. प्रक्रियाएं खो जाती हैं. मंजिल रह जाती है, रास्ते खो जाते हैं. शिखर तो दिखाई पड़ता है लेकिन वह पगडंडी दिखाई नहीं पड़ती, जो वहां तक पहुंचती है. ऐसा ही यह नमोकार मंत्र भी है. यह निष्पत्ति है. इसे पच्चीस सौ वर्ष से लोग दोहराते चले आ रहे हैं. यह शिखर है, लेकिन पगडंडी जो नमोकार मंत्र तक पहुंचा दे, वह न मालूम कब की खो गई है. इसके पहले कि हम मंत्र पर बात करें, उस पगडंडी पर थोड़ा-सा मार्ग साफ कर लेना उचित होगा. क्योंकि जब तक प्रक्रिया दिखाई न पड़े, तब तक निष्पत्तियां व्यर्थ हैं. और जब तक मार्ग न दिखाई पड़े, तब तक मंजिल व्यर्थ होती है और जब तक सीढ़ियां न दिखाई पड़ें, तब तक दूर दिखते हुए शिखरों का कोई भी मूल्य नहीं, वे स्वप्नवत् हो जाते हैं. वे हैं भी या नहीं, इसका भी निर्णय नहीं किया जा सकता. कुछ दो-चार मार्गों से नमोकार के रास्ते को समझें.

पत्थर पर 'ग्रूव्ज'

१९३७ में तिब्बत और चीन के बीच बोकाम पर्वत की एक गुफा में ७१६ पत्थर के रिकार्ड मिले. और वे रिकार्ड हैं महावीर से दस हजार साल पुराने. यानी आज से कोई साढ़े बारह हजार साल पुराने. बड़े आश्चर्य के हैं वे, क्योंकि वे रिकार्ड ठीक वैसे ही हैं जैसे ग्रामोफोन का रिकार्ड होता है. ठीक उनके बीच में छेद है और पत्थर पर ग्रूव्ज हैं, जैसे कि ग्रामाफोन के रिकार्ड्स पर होते हैं. अब तक यह राज़ तो नहीं खोला जा सका है कि वे किस यंत्र पर बजाये जा सकेंगे, लेकिन एक बात तय हो गई है. रूस के एक बड़े वैज्ञानिक डा० सर्जिएव ने वर्षों तक मेहनत करके यह प्रमाणित किया है कि वे हैं तो रिकार्ड ही. किस यंत्र पर और किस सुई के माध्यम से वे पुनरुज्जीवित हो सकेंगे, यह अभी तय नहीं हो सका. अगर एकाध पत्थर का टुकड़ा होता तो सांयोगिक भी हो सकता, सात सौ सोलह हैं. सब एक जैसे, जिनमें बीच में छेद हैं. सब पर ग्रूव्ज हैं और उनकी पूरी तरह सफाई की गई, धूल धुआंस अब अलग कर दी गई और जब विद्युत यंत्रों से उनकी परीक्षा की गई तो बड़ी हैरानी हुई. उनसे प्रतिपल विद्युत की किरणें विकीर्णित हो रही हैं. लेकिन क्या आदमी के पास आज से बारह हजार साल पहले ऐसी कोई व्यवस्था थी कि वह पत्थरों में कुछ रिकार्ड कर सके ? तब तो हमें सारा इतिहास और ढंग से लिखना पड़ेगा.

जापान के एक पर्वत शिखर पर पच्चीस हजार वर्ष पुरानी मूर्तियों का एक समूह है. वे मूर्तियां 'दोबु' कहलाती हैं. उन मूर्तियों ने बहुत हैरानी खड़ी कर दी, क्योंकि अब तक उन मूर्तियों को समझना संभव नहीं हुआ. लेकिन अब संभव हुआ है. जिस दिन हमारे यात्री अंतरिक्ष में गए, उसी दिन 'दोबु' मूर्तियों का रहस्य खुल गया, क्योंकि दोनों मूर्तियां उसी तरह के वस्त्र पहने हुए हैं जैसे अंतरिक्ष का यात्री पहनता है. अंतरिक्ष में यात्रियों ने—रूसी या अमरीकी ऐस्ट्रोनाट्स ने—जिन वस्तुओं का उपयोग किया, वे ही उन मूर्तियों के ऊपर हैं. पत्थर में खुदे हैं. वे मूर्तियां पच्चीस हजार साल पुरानी हैं और अब इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है मानने का, कि पच्चीस हजार साल पहले आदमी ने अंतरिक्ष की यात्रा की है. या अंतरिक्ष से किन्हीं और ग्रहों से आदमी जमीन पर आता रहा है. आदमी जो आज जानता है, वह पहली बार जान रहा है, ऐसी भूल में पड़ने का अब कोई कारण नहीं. आदमी बहुत बार जान लेता है और भूल जाता है. बहुत बार शिखर छू लिये गये हैं और खो गए हैं. सभ्यताएं उठती हैं और आकाश को छूती हैं, लहरों की तरह, और विलीन हो जाती हैं. जब भी कोई लहर आकाश को छूती है तो सोचती है, उसके पहले किसी और लहर ने आकाश को नहीं छुआ होगा.

महावीर एक बहुत बड़ी संस्कृति के अंतिम व्यक्ति हैं—जिस संस्कृति का विस्तार कम से कम दस लाख वर्ष है. महावीर, जैन विचार और परंपरा के अंतिम तीर्थंकर हैं— चौबीसवें. शिखर की, लहर की आखिरी ऊंचाई और महावीर के बाद वह लहर और सभ्यता और वह संस्कृति सब बिखर गयी. आज उन सूत्रों को समझना इसलिए कठिन है, क्योंकि वह पूरा का पूरा मिल्यू, वह वातावरण जिसमें वे सूत्र सार्थक थे, आज कहीं भी नहीं है. ऐसा समझें कि कल तीसरा महायुद्ध हो जाय. सारी सभ्यता बिखर जाय, सीधी लोगों के पास याददाश्त रह जायेगी कि लोग हवाई जहाजों में उड़ते थे. हवाई जहाज तो बिखर जायेंगे, याददाश्त रह जायगी. यह याददाश्त हजारों साल तक चलेगी और बच्चे हंसेंगे. कहेंगे कि कहां हैं हवाई जहाज, जिनकी तुम बात करते हो ? ऐसा मालूम होता है, कहानियां हैं, पुराण कथाएं हैं,'मिथ' हैं.

आदमी की ऊंचाई और गुरुत्वाकर्षण

चौबीस जैन तीर्थंकरों की ऊंचाई, शरीर की ऊंचाई बहुत काल्पनिक मालूम पड़ती है. उसमें महावीर भर की ऊंचाई आदमी की ऊंचाई है. बाकी तेईस तीर्थंकर बहुत ऊंचे हैं. इतनी ऊंचाई हो नहीं सकती. ऐसा ही वैज्ञानिकों का अब तक ख्याल था, लेकिन अब नहीं है. क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं, जैसे-जैसे जमीन सिकुड़ती गयी वैसे-वैसे जमीन पर ग्रेवीटेशन, गुरुत्वाकर्षण भारी होता गया. और जिस मात्रा में गुरुत्वाकर्षण भारी होती है, लोगों की ऊंचाई कम होती जाती है. आपकी दीवाल की छत पर छिपकली चलती है. आप कभी सोच नहीं सकते कि छिपकली आज से दस लाख साल पहले हाथी से बड़ा जानवर थी. वह अकेली बची, उसकी जाति के सारे जानवर खो गये. उतने बड़े जानवर अचानक क्यों खो गये ? अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जमीन के गुरुत्वाकर्षण में कोई छिपा हुआ राज मालूम पड़ता है. अगर गुरुत्वाकर्षण और सघन होता गया तो आदमी और छोटा होता चला जायेगा. अगर आदमी चांद पर रहने लगे तो आदमी की ऊंचाई चौगुनी हो जायगी. क्योंकि चांद पर चौगुना कम है गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी से. अगर हमने कोई और तारे, और ग्रह खोज लिये, जहां गुरुवाकर्षण और कम हो, तो ऊंचाई और बड़ी हो जायेगी. इसलिए आज एकदम कथा कह देने में बहुत कठिन है. नमोकार को जैन परंपरा ने महामंत्र कहा है. पृथ्वी पर दस पांच ऐसे मंत्र हैं जो नमोकार की हैसियत के हैं. असल में प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र अनिवार्य है, क्योंकि उसके इर्द गिर्द ही उसकी सारी व्यवस्था, सारा भवन निर्मित होता है.

ये महामंत्र करते क्या हैं, इनका प्रयोजन क्या है, इनमें क्या फलित हो सकता है ? आज साउण्ड इलेक्ट्रानिक्स, ध्वनि विज्ञान बहुत से नये तथ्यों

के करीब पहुंच रहा है. उसमें एक तथ्य यह है कि इस जगत् में पैदा की गयी कोई भी ध्वनि कभी भी नष्ट नहीं होती. इस अनंत आकाश में संग्रहीत होती चली है. ऐसा समझें कि जैसे आकाश भी रिकार्ड करता है. आकाश पर भी किसी सूक्ष्म तल ग्रूव्ज़ बन जाते हैं. इस पर रूस ने इधर पंद्रह वर्षों में बहुत काम किया है. उस काम पर दो-तीन बातें ख्याल में ले लें तो आसानी हो जायेगी.

सद्भाव का पेड़-पौदों पर प्रभाव

अगर एक सद्भाव से भरा हुआ व्यक्ति, मंगल कामना से भरा हुआ व्यक्ति आंख बंद करके अपने हाथ में जल से भरी हुई एक मटकी ले ले और कुछ क्षण सद्भावों के साथ उस जल की मटकी को हाथ में लिये रहे, तो वह जल गुणात्मक रूप से परिवर्तित हो जाता है. रूसी वैज्ञानिक कामेनियोव और अमरीकी वैज्ञानिक डा० रुडाल्फ फिररइन दो व्यक्तियों ने बहुत से प्रयोग करके प्रमाणित किया है. यद्यपि केमिकली कोई फर्क नहीं होता. उस भली भावनाओं से भरे हुए, मंगल आकांक्षाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में जल का स्पर्श, जल में कोई केमिकल, कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं करता, लेकिन उस जल में फिर भी कोई गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है. और वह जल अगर बीजों पर छिड़का जाय तो वे जल्दी अंकुरित होते हैं. साधारण जल की बजाय उनमें बड़े फूल आते हैं, बड़े फल लगते हैं. वे पौधे ज्यादा स्वस्थ होते हैं, साधारण जल की बजाय. कामेनियोव ने साधारण जल भी उन्हीं बीजों पर वैसे ही भूमि में छिड़का है और यह विशेष जल भी. और रुग्ण, विक्षिप्त, निगेटिव इमोशन से भरे हुए व्यक्ति, निषेधात्मक भाव से भरे हुए व्यक्ति, हत्या का विचार करने वाले, दूसरे को नुकसान पहुंचाने का विचार करने वाले, अंमगल की भावनाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में दिया गया जल भी बीजों पर छिड़का है. या तो वे बीज अंकुरित ही नहीं होते, या अंकुरित होते तो रुग्ण अंकुरित होते हैं.

पंद्रह वर्ष के हजारों प्रयोगों के बाद यह निष्पत्ति की जा सकी कि जल में अब तक हम सोचते थे कि केमिस्ट्री ही सब कुछ है, लेकिन केमिकली तो कोई फर्क नहीं होता, रासायनिक रूप से तीनों जलों में कोई फर्क नहीं होता. फिर भी कोई फर्क हो जरूर जाता है. वह फर्क क्या है ? और वह फर्क जल में कहां से प्रवेश करता है. निश्चित ही वह फर्क, अब तक जो भी हमारे पास उपकरण हैं, उनसे नहीं जांचा जा सकता है. लेकिन वह फर्क होता है, यह परिणाम से सिद्ध होता है. क्योंकि तीनों जलों का आत्मिक रूप बदल जाता है; केमिकल रूप तो नहीं बदलता, लेकिन तीनों जलों की आत्मा

In this PDF, pages 48 and 49 are missing.

आपका आभामंडल आपके संबंध में वह सब कुछ कहता है, जो आप भी नहीं जानते. आपका आभामंडल आपके संबंध में वे बातें भी कहता है, जो भविष्य में घटित होंगी. आपका आभामंडल वे भी बातें कहता है जो अभी आपके गहन अचेतन मन में निर्मित हो रही हैं, बीज की भांति कल खिलेंगी और प्रगट होंगी. मंत्र आभामंडल को बदलने की आमूल प्रक्रिया है. आपके आसपास की स्पेस, और आपके आसपास का 'इलेक्ट्रोडायनमिक फील्ड' बदलने की प्रक्रिया है. और प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र है. जैन परंपरा के पास नमोकार है. आश्चर्यजनक घोषणा : ऐसो पंच नमस्कारो, सव्व पाप्पनाशनम्. सब पापों का नाश कर दे, ऐसा महामंत्र है नमोकार. ठीक नहीं लगता. नमोकार से कैसे पाप नष्ट हो जायेगा. नमोकार से सीधा पाप नष्ट नहीं होता है. लेकिन नमोकार से आपके आसपास इलेक्ट्रोडायनमिक फील्ड रूपांतरित होता है और पाप करना असंभव हो जाता है. क्योंकि पाप करने के लिए आपके आसपास एक खास तरह का आभामंडल चाहिए, उसके बिना आप पाप नहीं कर सकते. वह आभामंडल अगर रूपांतरित हो जाये, तो असंभव हो जायेगा पाप करना. यह नमोकार कैसे उस आभामंडल को बदलता होगा ?

यह नमस्कार जो है वह नमन का भाव है. नमन का अर्थ है समर्पण. यह शाब्दिक नहीं है. यह नमो अरिहंतानम्, अरिहंतों को नमस्कार करता हूं शाब्दिक नहीं है. ये शब्द नहीं हैं. यह भाव है. अगर प्राणों में यह भाव सघन हो जाय कि अरिहंतों को नमस्कार करता हूं, तो इसका अर्थ क्या होता है ? इसका अर्थ होता है, जो जानते हैं उनके चरणों में सिर रखता हूं. जो पहुंच गए हैं, उनके चरणों में समर्पित करता हूं. जो पा गए हैं, उनके द्वार पर मैं भिखारी बनकर खड़ा होने को तैयार हूं. किरलियान की फोटोग्राफी ने यह भी बताने की कोशिश की है कि आपके भीतर जब भाव बदलते हैं, तो द्वार के आसपास का विद्युत मंडल बदलता है. और अब तो यह 'फोटोग्राफ' उपलब्ध है. अगर आप अपने भीतर विचार कर रहे हैं चोरी करने का, तो आपका आभामंडल और तरह का हो जाता है, उदास, रुग्ण, खूनी रंगों से भर जाता है. आप किसी गिर गए को उठाने जा रहे हैं, आपके आभामंडल के रंग तत्काल बदल जाते हैं.

'स्लीपिंग प्राफेट'

रूस में एक महिला है नेल्या मिखायलोवा. इस महिला ने पिछले पंद्रह वर्षों में रूस में आमूल क्रांति खड़ी कर दी. और यह जानकर हैरानी होगी कि मैं रूस के इन वैज्ञानिकों के नाम क्यों ले रहा हूं. कुछ कारण हैं. आज से चालीस साल पहले अमरीका के एक बहुत बड़े 'प्रोफेट' एडगर कायसी, जिसको

अमरीका का 'स्लीपिंगप्रोफेट' कहा जाता है, जो कि सो जाते थे गहरी तंद्रा में, जिसे हम समाधि कहें और उसमें वह जो भविष्यवाणियां करते थे, वे अब तक सभी सही निकली थीं. उस प्राफेट ने थोड़ी भविष्यवाणियां नहीं कीं, दस हजार भविष्यवाणियां कीं. उसकी एक भविष्यवाणी, चालीस साल पहले की, सुनकर उस वक्त सब लोग हैरान हुए. उसने यह भविष्यवाणी की थी कि आज से चालीस साल बाद धर्म का एक नवीन वैज्ञानिक आविर्भाव रूस से प्रारम्भ होगा. और एडगर कायसी चालीस साल पहले गए रूस जबकि वहां धर्म नष्ट किया जा रहा था, चर्च गिराये जा रहे थे, मंदिर हटाये जा रहे थे; पादरी, पुरोहित साइबेरिया भेजे जा रहे थे. उन क्षणों में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि रूस में धर्म का नया जन्म होगा. रूस अकेली भूमि थी उस समय जमीन पर, जहां धर्म पहली दफे व्यवस्थित रूप से नष्ट किया जा रहा था.जहां पहली दफा नास्तिकों के हाथ में सत्ता थी. पूरी मनुष्य जाति के इतिहास में, जहां पहली बार नास्तिकों ने एक संगठित प्रयास किया था, आस्तिकों के संगठित प्रयास तो होते रहते हैं; पर यह नास्तिकों का प्रयास था. और कायसी की यह घोषणा कि चालीस साल बाद रूस से ही जन्म होगा.

जीवन का एक नियम है कि जीवन एक तरह का संतुलन निर्मित करता है. जिस देश में बड़े नास्तिक पैदा होने बंद हो जाते हैं, उस देश में बड़े आस्तिक भी पैदा होने बंद हो जाते हैं. जीवन एक संतुलन है. और जब रूस में इतनी प्रगाढ़ नास्तिकता थी तो 'अंडरग्राउंड', छिपे मार्गों से आस्तिकता ने पुन: आविष्कार करना शुरू कर दिया. स्टालिन के मरने तक भारी खोजबीन छिपके चलती थी. स्टालिन के मरने के बाद वह खोजबीन प्रकट हो गयी. स्टालिन खुद भी बहुत हैरान था.

ध्यान से वस्तु गतिमान

वह बात स्पष्ट करूं कि मिखायलोवा पंद्रह वर्ष से रूस में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है. क्योंकि मिखायलोवा सिर्फ ध्यान से किसी भी वस्तु को गतिमान कर पाती है; हाथ से नहीं, शरीर के किसी प्रयोग से नहीं. वहां दूर, छह फीट दूर रखी हुई कोई भी चीज हो, मिखायलोवा सिर्फ उस पर एकाग्रचित्त होकर उसे गति दे देती है. या तो उसे अपने पास खींच पाती है, वस्तु चलना शुरू कर देती है, या अपने से दूर हटा पाती है या मैगनेटिक नीडिल लगी हो तो उसे घुमा पाती है, या घड़ी हो तो उसके कांटे कोतेजी से चक्कर दे पाती है, या घड़ी हो तो बंद कर पाती है. सैकड़ों प्रयोग. लेकिन एक बहुत हैरानी की बात है कि अगर मिखायलोवा प्रयोग कर रही हो और आस-पास संदेहशील लोग हों, तो उसे पांच घंटे लग जाते हैं, तब वह हिला

पाती है. अगर आस-पास मित्र हों, सहानुभूतिपूर्ण हों तो वह आधा घंटे में हिला पाती है. अगर आस-पास श्रद्धा से भरे हुए लोग हों तो पांच मिनट में. और एक मजे की बात है कि जब उसे पांच घंटे लगते हैं किसी वस्तु को हिलाने में, तो उसका कोई दस पौंड वजन कम हो जाता है. जब उसे आधा घंटा लगता है तब कोई तीन पौंड वजन कम होता है. और जब पांच मिनट लगते हैं तो उसका कोई वजन कम नहीं होता है.

पंद्रह सालों में बड़े वैज्ञानिक प्रयोग किये गये हैं. दो 'नोबेल प्राइज विनर' वैज्ञानिक डा० वासिलिएव और कामिनिएव और चालीस और चोटी के वैज्ञानिकों ने हजारों प्रयोग करके इस बात की घोषणा की है कि मिखायलोवा जो कर रही है, वह तथ्य है. और अब उन्होंने यंत्र विकसित किये हैं जिनके द्वारा मिखायलोवा के आस-पास क्या घटित होता है, वह रिकार्ड हो जाता है. तीन बातें रिकार्ड होती हैं. एक तो जैसे ही मिखायलोवा ध्यान एकाग्र करती है उसके आस-पास का आभामंडल सिकुड़कर एक धारा में बहने लगता है. जिस वस्तु के ऊपर वह ध्यान करती है, उसके आस-पास. 'लेसर रे' की तरह, एक विद्युत की किरण की तरह संग्रहीत हो जाता है. और उसके चारों तरफ किरलियान की फोटोग्राफी से, जैसे कि समुद्र में लहरें उठती हैं, ऐसा उसका आभामंडल तरंगित होने लगता है. और वे तरंगें चारों तरफ फैलने लगती हैं. उन्हीं तरंगों के धक्के से वस्तुएं हटती हैं या पास खींची जाती हैं. सिर्फ भावना, कि वस्तु मेरे पास आ जाय, वस्तु पास आ जाती है; उसका भाव कि दूर हट जाये, वस्तु दूर चली जाती हैं.

इससे भी हैरानी की बात जो तीसरी है वह यह है कि रूसी वैज्ञानिकों का ख्याल है कि यह जो 'इनर्जी' है, यह चारों तरफ जो ऊर्जा फैलती है, इसे संग्रहीत किया जा सकता है. इसे यंत्रों में संग्रहीत किया जा सकता है. निश्चित ही जब इनर्जी है तो संग्रहीत की जा सकती है. कोई भी ऊर्जा संग्रहीत की जा सकती है. और इस प्राण ऊर्जा का, जिसको योग प्राण कहता है, यह ऊर्जा अगर यंत्रों में संग्रहीत हो जाये, तो उस समय जो मूल भाव था व्यक्ति का, वह गुण उस संग्रहीत शक्ति में भी बना रहता है. जैसे-जैसे मिखायलोवा अगर किसी वस्तु को अपने पास खींच रही है उस समय उसके शरीर से जो ऊर्जा गिर रही है जिसमें उसका तीन पौंड या दस पौंड वजन कम हो जाय, वह ऊर्जा संग्रहीत की जा सकती है. ऐसे 'रिसेप्टिव' यंत्र तैयार किए गए हैं कि ऊर्जा उन यंत्रों में प्रवेश कर जाती है, और संग्रहीत हो जाती है. फिर यदि उस यंत्र को कमरे में रख दिया जाय और आप कमरे के भीतर जायें तो वह यंत्र आपको अपनी तरफ खींचेगा. आपका मन होगा उसके पास जायें. यंत्र है, आदमी वहां नहीं है.

मंत्र की भी यही आधारशिला है. शब्द में, विचार में, तरंग में भाव संग्रहीत और समाविष्ट हो जाता है. जब कोई व्यक्ति कहता है नमो अरिहं–तानम्, मैं उन सबको जिन्होंने जीता और जाना अपने को, उनकी शरण में अपने को छोड़ता हूं; तब उसका अहंकार तत्काल विगलित होता है. और जिन-जिन लोगों ने इस जगत् में अरिहंतों की शरण में अपने को छोड़ा है, उस महाधारा में उसकी शक्ति सम्मिलित होती है. उस गंगा में वह भी एक हिस्सा हो जाता है. और चारों तरफ आकाश में इस अरिहंत के भाव के आसपास जो ग्रूव्ज निर्मित हुए हैं, स्पेस में, आकाश में जो तरंगें संग्रहीत हुई हैं, उन संग्रहीत तरंगों में आपकी तरंग भी चोट करती है. आपके चारों तरफ एक वर्षा हो जाती है जो आपको दिखाई नहीं पड़ती. आपके चारों ओर एक और दिव्य धागा, भगवत् धागा लोक-निर्मित हो जाता है. इस लोक के साथ, इस भाव-लोक के साथ आप दूसरे तरह के व्यक्ति हो जाते हैं.

महामंत्र स्वयं आपके आसपास के आभास को, स्वयं के आसपास के आभामंडल को बदलने की कीलियां हैं. और अगर कोई व्यक्ति दिन-रात, जब भी उसे स्मरण का अवसर मिले, तभी नमोकार में डूबता रहे तो वह एक दूसरा ही व्यक्ति हो जायगा. वह वही व्यक्ति नहीं रह सकता, जो होता है. पांच नमस्कार हैं. अरिहंत को नमस्कार. अरिहंत का अर्थ होता है जिसके सारे शत्रु विष्ट हो गए. जिसके भीतर अब कुछ ऐसा नहीं रहा है जिससे उसे लड़ना पड़ेगा. लड़ाई समाप्त हो गई. भीतर अब क्रोध नहीं, जिससे लड़ना पड़. भीतर अब काम नहीं, जिससे लड़ना पड़े. भीतर अब लोभ नहीं जिससे लड़ना पड़े, अहंकार नहीं जिससे लड़ना पड़े, अज्ञान नहीं जिससे लड़ना पड़े. वे सब समाप्त हो गए, जिनसे लड़ाई थी.

अरिहंत को नमस्कार

अब एक 'नानकानफ्लिक्ट' एक निर्बंध अस्तित्व शुरू हुआ. अरिहंत शिखर है, जिसके आगे यात्रा नहीं है. अरिहंत मंजिल है, जिसके आगे फिर कोई यात्रा नहीं है. कुछ करने से न बचा जहां, कुछ पाने से न बचा जहां, कुछ छोड़ने को भी न बचा जहां, जहां सब समाप्त हो गया. जहां शुद्ध अस्तित्व रह गया, 'प्योर एक्जिस्टेंस' जहां रह गया, जहां गंध मात्र रह गई, जहां होना मात्र रह गया, उसे कहते हैं अरिहंत. अद्भुत है यह बात भी कि इस महामंत्र ने किसी व्यक्ति का नाम नहीं लिया. महावीर का नहीं,पार्श्वनाथ का नाम नहीं, किसी का नाम नहीं. जैन परंपरा का भी कोई नाम नहीं. क्योंकि जैन-परंपरा यह स्वीकार करती है कि अरिहंत जैन-परंपरा में ही नहीं हुए, और सब परंपराओं में भी हुए हैं. इसलिए अरिहंतों को नमस्कार है, किसी अरिहंत को

नहीं. यह नमस्कार बड़ा विराट है, संभवतः विश्व के किसी धर्म ने ऐसा महामंत्र, इतना सर्वांगीण, इतना सर्वस्पर्शी महामंत्र विकसित नहीं किया है. व्यक्ति का जैसे ख्याल भी नहीं है, केवल शक्ति का ख्याल है. रूप पर ध्यान ही नहीं है, वह जो अरूप सत्ता है, उसी का ध्यान है—अरिहंतों को नमस्कार.

महावीर को जो प्रेम करता है, उसे कहना चाहिए महावीर को नमस्कार. बुद्ध को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए बुद्ध को नमस्कार. राम को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए राम को नमस्कार.पर यह मंत्र बहुत अनूठा है, बेजोड़ है. और किसी परंपरा में ऐसा मंत्र नहीं है, जो सिर्फ इतना कहता है अरिहंतों को नमस्कार, उन सबको नमस्कार जिनकी मंजिल आ गई है. असल में मंजिल को नमस्कार. वह जो पहुंच गये उनको नमस्कार.

लेकिन अरिहंत शब्द 'निगेटिव' है—नकारात्मक है. उसका अर्थ है जिनके शत्रु समाप्त हो गए. वह 'पाजिटिव' नहीं है, वह विधायक नहीं है. असल में इस जगत् में जो श्रेष्ठतम अवस्था है, उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है, नेति-नेति से उसको विधायक शब्द नहीं किया जा सकता. उसका कारण है. सभी विधायक शब्दों में सीमा आ जाती है, निषेध में सीमा नहीं होती. अगर मैं कहता हूं ऐसा है, तो एक सीमा निर्मित होती है. अगर में कहता हूं कि ऐसा नहीं है, तो कोई सीमा नहीं है. 'नहीं' की कोई सीमा नहीं, 'है' की तो सीमा है. तो 'है' तो बड़ा छोटा शब्द है. 'नहीं' बहुत विराट है.इसलिए परम शिखर पर रखा है अरिहंत. सिर्फ इतना ही कहा है कि जिनके सब शत्रु समाप्त हो गए, जिनके अंतर्द्वंद्व विलीन हो गए, नकारात्मक हो गए. जिनमें लोभ नहीं, मोह नहीं, काम नहीं. क्या है, यह नहीं कहा, क्या नहीं है जिनमें, वह कहा.

सिद्ध कौन है ?

इसलिए अरिहंत बहुत वायवीय, बहुत 'एब्स्ट्रेक्ट' शब्द है और शायद पकड़ में न आए. इसलिए ठीक दूसरे शब्द में 'पाजिटिव' का उपयोग किया है : नमो सिद्धानम्. सिद्ध का अर्थ होता है वे, जिन्होंने पा लिया. अरिहंत का अर्थ होता है वे, जिन्होंने कुछ छोड़ दिया. सिद्ध बहुत 'पाजिटिव' शब्द है. सिद्धि, उपलब्धि, 'एचीवमेंट' जिन्होंने पा लिया. लेकिन ध्यान रहे, जिन्होंने खो दिया है उनको ऊपर रखा है. जिन्होंने पा लिया, उनको नंबर दो पर रखा है. क्यों ? सिद्ध अरिहंत से छोटा नहीं होता. सिद्ध वहीं पहुंचता है जहां अरिहंत पहुंचता है. लेकिन भाषा में 'पाजिटिव' नंबर दो पर रखा जायेगा. लेकिन सिद्ध के संबंध में भी सिर्फ इतनी ही सूचना कि पहुंच गए; और कुछ नहीं कहा है. कोई विशेषण नहीं जोड़ा. पर पहुंच गए कहने भर से भी हमारी समझ में नहीं

आयेगा. अरिहंत भी हमें बहुत दूर लगता है— जो शून्य हो गए, निर्वाण को पा गए, मिट गए, नहीं रहे. सिद्ध भी बहुत दूर है. सिर्फ इतना ही कहा है कि जिन्होंने पा लिया. लेकिन क्या ? और पा लिया तो हम कैसे जानें ? क्योंकि सिद्ध होना अनभिव्यक्ति भी हो सकता है, 'अनमेनिफेस्ट' भी हो सकता है.

बुद्ध से कोई पूछता है कि आपके ये दस हजार भिक्षु हैं, आप बुद्धत्व को पा गए. इनमें से और कितनों ने बुद्धत्व को पा लिया. बुद्ध कहते हैं, बहुतों ने. लेकिन वह पूछने वाला कहता है, दिखाई नहीं पड़ता. तो बुद्ध कहते हैं, मैं प्रकट होता हूं, वे अप्रकट. वे अपने में ही छिपे हैं जैसे बीज में वृक्ष छिपा हो. तो सिद्ध तो बीज जैसा है, पा लिया. और बहुत बार ऐसा होता है कि पाने की घटना घटती है और वह इतनी गहन होती है कि प्रकट करने की चेष्टा भी उससे पैदा नहीं होती. इसलिए सभी सिद्ध बोलते नहीं, सभी अरिहंत बोलते नहीं. सभी सिद्ध, सिद्ध होने के बाद जीते भी नहीं. इतना लीन भी हो सकती है चेतना उस उपलब्धि में कि तत्क्षण शरीर छूट जाय. इसलिए हमारी पकड़ में सिद्ध भी न आ सकेगा. और मंत्र तो ऐसा चाहिए जो पहली सीढ़ी से लेकर आखिरी शिखर तक जहां जो है, वहीं से पकड़ में आ जाय. जो जहां खड़ा हो, वहीं से यात्रा कर सके. इसलिए तीसरा सूत्र कहा है आचार्यों को नमस्कार.

आचार्य वह जिसने.....

आचार्य का अर्थ है वह जिसने पाया भी और आचरण से प्रकट भी किया. आचार्य का अर्थ है जिसका ज्ञान और आचरण एक है. ऐसा नहीं कि सिद्ध का आचरण ज्ञान से भिन्न होता है. लेकिन शून्य हो सकता है. आचरण शून्य ही हो जाय. ऐसा भी नहीं कि अरिहंत का आचरण भिन्न होता है. लेकिन अरिहंत इतना निराकार हो जाता है कि हो सकता है आचरण हमारी पकड़ में न आये. हमें फ्रेम चाहिए जिसमें पकड़ना आ जाय. आचार्य से शायद निकटता मालूम पड़ेगी ज्ञान और आचरण के अर्थों में. हम ज्ञान को भी न पहचान पायेंगे, आचरण को पहचान लेंगे. इससे खतरा भी हुआ. क्योंकि आचरण ऐसा भी हो सकता है जैसा ज्ञान न हो. एक आदमी अहिंसक न हो, तो भी अहिंसा का आचरण कर सकता है. एक आदमी अहिंसक हो तो हिंसा का आचरण नहीं कर सकता. वह तो असंभव है. लेकिन एक आदमी लोभी हो तो अलोभ का आचरण कर सकता है. इससे एक खतरा भी पैदा हुआ. आचार्य हमारी पकड़ में आता है, लेकिन जहां से हमारी पकड़ शुरू होती है, वहीं से खतरा शुरू होता है. खतरा यह है कि कोई आदमी आचरण ऐसा कर सकता है कि आचार्य मालूम पड़े. मजबूरी है हमारी. जहां से

सीमाएं बननी शुरू होती हैं वहीं से हमें दिखायी पड़ता है और जहां से हमें दिखाई पड़ता है वहीं से हमारे अंधे होने का डर है.

पर मंत्र का प्रयोजन यही है कि हम उनको नमस्कार करते हैं, जिनका ज्ञान उनका आचरण है. यहां भी कोई विशेषण नहीं है. आखिर वे कौन ? वे कोई भी हों.

एक ईसाई फकीर जापान गया था. और जापान के एक जैन भिक्षु से मिलने गया. उसने पूछा जैन भिक्षु से कि जीसस के सम्बन्ध में आपका क्या ख्याल है. उस भिक्षु ने कहा, मुझे जीसस का कुछ भी पता नहीं है. तुम कुछ कहो, ताकि मैं ख्याल बना सकूं. तो उसने कहा, जीसस ने कहा है कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे तो तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना. तो उस जैन फकीर ने कहा, आचार्य को नमस्कार. वह ईसाई फकीर कुछ समझ न सका. उसने कहा, जीसस ने कहा है कि जो अपने को मिटा देगा वहीं पायेगा. उस जैन फकीर ने कहा, सिद्ध को नमस्कार. वह कुछ समझ न सका. उसने कहा, क्या कह रहे हैं. उस ईसाई फकीर ने कहा कि जीसस ने अपने को सूली पर मिटा दिया. वे शून्य हो गये. मृत्यु को उन्होंने चुपचाप स्वीकार कर लिया. वे निराकार हो खो गये. उस जैन फकीर ने कहा, अरिहंत को नमस्कार. आचरण और ज्ञान जहां एक हो जाये, उसे हम आचार्य कहते हैं. वह सिद्ध भी हो सकता है, वह अरिहंत भी हो सकता है .

महावीर और 'इलेक्ट्रोमैगनेटिक फील्ड'

लेकिन हमारी पकड़ में वह आचरण से आता है. यह जरूरी भी नहीं, क्योंकि आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है. और हम बड़ी स्थूल बुद्धि के लोग हैं. आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है. इसको पकड़ पाना भी आसान नहीं. जैसे कि महावीर का नग्न खड़ा हो जाना, निश्चित ही लोगों को अच्छा नहीं लगा. गांव-गांव से महावीर को खदेड़कर भगाया गया. गांव-गांव महावीर पर पत्थर फेंके गये. हम ही लोग थे, हम ही यह सब करते रहे. कोई और नहीं था. महावीर की नग्नता लोगों को भारी पड़ी, क्योंकि लोगों ने कहा यह तो आचरणहीनता है, यह कैसा आचरण. तो आचरण बहुत सूक्ष्म है. महावीर का नग्न हो जाना इतना निर्दोष आचरण है, जिसका कोई हिसाब लगाना कठिन है. हिम्मत अद्भुत है. महावीर इतने सरल हो गये कि छिपाने को कुछ न बचा. और महावीर को इस चमड़ी और हड्डी की देह का बोध मिट गया और वह, जिसको रूसी वैज्ञानिक 'इलेक्ट्रोमैगनेटिक फील्ड' कहते हैं, उस प्राण शरीर का बोध इतना सघन हो गया कि उस पर से कपड़े गिर गए. ऐसा नहीं कि महावीर ने कपड़े छोड़े; कपड़े गिर गए.

एक दिन एक राह से गुजरते हुए एक झाड़ी में चादर उलझ गई. अब इसलिए कि झाड़ी के फूल न गिर जायं, पत्ते न टूट जायं, कांटों को चोट न लग जाय, आधी चादर फाड़कर वहीं छोड़ दी. आधी रह गई शरीर पर. फिर वह भी गिर गई. वह कब गिर गई, उसका महावीर को पता न चला. लोगों को पता चला कि महावीर नग्न खड़े हैं. आचरण सहना मुश्किल हो गया. आचरण के रास्ते सूक्ष्म हैं. और हम सबके आचरण के सम्बन्ध में बंधे-बंधाये ख्याल हैं. ऐसा करो—और जो ऐसा करने को राजी हो जाते हैं, वे करीब-करीब मुर्दा लोग हैं. जो आपकी मानकर आचरण कर लेते हैं उन मुर्दों को आप काफी पूजा देते हैं. इसलिए कहा है आचार्यों को नमस्कार. आप आचरण तय नहीं करेंगे उनका ज्ञान ही आचरण तय करेगा. और ज्ञान परम स्वतंत्रता है. जो व्यक्ति आचार्य को नमस्कार कर रहा है, वह यह भाव कर रहा है कि में नहीं जानता था क्या है ज्ञान, क्या है आचरण. लेकिन जिनका भी आचरण उनके ज्ञान से उपजता है और बहता है, उनको मैं नमस्कार करता हूं. अभी भी बात सूक्ष्म है इसलिए चौथे चरण में उपाध्यायों को नमस्कार. उपाध्याय का अर्थ है आचरण ही नहीं, उपदेश भी. ये जो जानते हैं, जानकर वैसा जीते हैं और जैसा वे जीते हैं और जानते हैं वैसा बताते भी हैं. उपाध्याय का अर्थ है वह जो बताता भी है. क्योंकि हम मौन से न समझ पायें तो ! आचार्य मौन हो सकता है. वह मान सकता है कि आचरण काफी है. और अगर तुम्हें आचरण दिखाई नहीं पड़ता, तो तुम जानो. उपाध्याय आप पर और भी दया करता है, वह बोलता भी है—वह आपको कहकर भी बताता है.

चार की परिधि से परे

ये चार स्पष्ट रेखाएं हैं. लेकिन जानने वाले इन चार के बाहर भी छूट जायेंगे. क्योंकि जानने वालों को 'कैटेगरी' से बांधा नहीं जा सकता. पांचवें चरण में एक सामान्य नमस्कार है : नमो लोए सव्व साहुणम्. लोक में जो भी साधु हैं उन सबको नमस्कार. जगत में जो भी साधु हैं, उन सबको नमस्कार. जो इन चार में कहीं भी छूट गए हों उनके प्रति भी हमारा नमन न छूट जाए. क्योंकि उन चार में बहुत लोग छूट सकते हैं. जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है. 'केटेगराइज़' नहीं किया जा सकता है, खांचों में नहीं बांटा जा सकता है. इसलिए जो शेष रह जायेंगे उनको सिर्फ साधु कहा है, वे जो सरल हैं. साधु का एक अर्थ और भी है. इतना सरल भी हो सकता है कोई कि उपदेश देने में संकोच करे. इतना सरल भी हो सकता है कोई कि आचरण को भी छिपाये. पर उसको भी हमारे नमस्कार पहुंचने चाहिएं. सवाल यह

नहीं है कि हमारे नमस्कार से उसको कुछ फायदा होगा. सवाल यह है कि हमारा नमस्कार हमें रूपांतरित करता है. न अरिहंतों को कोई फायदा होगा, न सिद्धों को, न आचार्यों को, न उपाध्यायों को, न साधुओं को. पर आपको फायदा होगा. यह बहुत मजे की बात है कि हम सोचते हैं कि शायद इस नमस्कार में हम सिद्धों के लिए अथवा अरिहंतों के लिए कुछ कर रहे हैं. तो इस भूल में न पड़ें. आप उनके लिए कुछ भी न कर सकेंगे या आप जो भी करेंगे, उपद्रव ही करेंगे. आपकी इतनी ही कृपा काफी है कि आप उनके लिए कुछ न करें. आप गलत ही कर सकते हैं. तो यह नमस्कार अरिहंतों के लिए नहीं है. अरिहंतों की तरफ है. लेकिन आपके लिए है. इसके जो परिणाम हैं, वे आप पर होने वाले हैं, जो फल है वह आप पर बरसेगा. अगर कोई व्यक्ति इस भांति नमन से भरा हो, तो क्या आप सोचते हैं उस व्यक्ति में अहंकार टिक सकेगा ? असंभव है.

लेकिन नहीं, हम बहुत अद्‌भुत लोग हैं. अगर अरिहंत सामने खड़ा हो तो हम पहले इस बात का पता लगायेंगे कि अरिहंत है भी ? महावीर के बारे में भी लोग यही पता लगाते-लगाते जीवन नष्ट करते रहे. अरिहंत हैं भी ? तीर्थंकर हैं भी ? उन बातों का आपको पता नहीं है इसलिए आप सोचते हैं कि सब तय हो गया. महावीर के वक्त में बात इतनी तय न थी. और भी भीड़ें थीं, और भी लोग थे, जो कह रहे थे, ये अरिहंत नहीं है. अरिहंत और है. घोषालक है अरिहंत. ये तीर्थंकर नहीं है. यह दावा झूठा है.

लेकिन महावीर का तो कोई दावा नहीं था. हां, जो महावीर को जानते थे, वे दावे से बच भी नहीं सकते थे. उनकी भी अपनी कठिनाई है. महावीर के समय चारों ओर यही विवाद था. लोग जांच करने वाले आते कि महावीर अरिहंत हैं या नहीं, तीर्थंकर हैं या नहीं, वे भगवान हैं या नहीं. बड़ी आश्चर्य की बात है—आप जांच भी कर लेंगे और सिद्ध भी हो जायगा कि महावीर भगवान नहीं हैं तो आपको क्या मिलेगा ? लेकिन महावीर भगवान न भी हों और आप उनके चरणों में सिर रखें और कह सकें कि नमो अरिहंतानम् तो आपको कुछ मिलेगा. महावीर के भगवान होने से कोई फर्क नहीं पड़ता. असली सवाल यह नहीं है कि महावीर भगवान हैं या नहीं. असली सवाल यह है कि कहीं भी आपको दिख सकते हैं या नहीं. कहीं भी— पत्थर में, पहाड़ में. कहीं भी आपको दिख सकें तो आप नमन को उपलब्ध हो जायें. असली राज तो नमन में है, असली राज तो झुक जाने में है. वह जो झुक जाता है, उसके भीतर सब कुछ बदल जाता है. वह आदमी दूसरा हो जाता है. यह सवाल नहीं है कि कौन सिद्ध है, कौन सिद्ध नहीं है और इसका कोई

उपाय भी नहीं है कि किसी दिन यह तय हो सके. लेकिन यह बात ही 'इर्रेलिवेंट' है, असंगत है. इससे कोई संबंध ही नहीं है. न रहे हों महावीर, इससे क्या फर्क पड़ता है. लेकिन अगर आपके लिए झुकने के लिए निमित्त बन सकते हैं तो बात पूरी हो गई. महावीर सिद्ध हैं या नहीं, यह वे सोचें और समझें. वे अरिहंत अभी हैं या नहीं, यह उनकी अपनी चिंता हो. आपके लिए चिंतित होने का कोई भी तो कारण नहीं है. आपके लिए चिंतित होने का अगर कोई कारण है तो एक ही कारण है कि कहीं कोई कोना है इस अस्तित्व में, जहां आपका सिर झुक जाय. अगर ऐसा कोई कोना है तो आप नये जीवन को उपलब्ध हो जायेंगे,

यह नमोकार इसकी चेष्टा है कि अस्तित्व में कोई कोना न बचे.जहां-जहां सिर झुकाया जा सके, अज्ञात, अनजान, अपरिचित हर कोना. पता नहीं कौन साधु है इसलिए नाम नहीं लिए. पता नहीं कौन अरिहंत है. पर इस जगत् में जहां अज्ञानी हैं वहां ज्ञानी भी हैं. क्योंकि जहां अंधेरा है वहां प्रकाश है. जहां रात-सांझ होती है वहां सुबह भी होती है. जहां सूरज अस्त होता है वहां सूरज उगता भी है. यह अस्तित्व द्वंद्व की व्यवस्था है तो जहां इतना सघन अज्ञान है वहां इतना सघन ज्ञान भी होगा ही. यह श्रद्धा है. और इस श्रद्धा से भरकर जो ये पांच नमन कर पाता है वह एक दिन कह पाता है— निश्चय ही मंगलमय है सूत्र. इससे सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं.

चरण और नमन का आचरण

ध्यान में रख लें, मंत्र आपके लिए है. मंदिर में जब मूर्ति के चरणों में आप सिर रखते हैं, तब सवाल यह नहीं होता है कि वे चरण परमात्मा के हैं या नहीं. सवाल इतना ही होता है कि वह जो चरण के समक्ष झुकनेवाला सिर है, वह परमात्मा के समक्ष झुक रहा है या नहीं. वे चरण तो निमित्त हैं. उन चरणों का कोई प्रयोजन नहीं है. वह तो आपके झुकने की कोई जगह बनाने के लिए व्यवस्था है. लेकिन झुकने में पीड़ा होती है. इसलिए जो भी वैसी पीड़ा है उस पर क्रोध आता है. जीसस पर या महावीर पर या बुद्ध पर जो क्रोध आता है, वह भी स्वाभाविक मालूम पड़ता है; क्योंकि झुकने में पीड़ा होती है. अगर महावीर आयें और आपके चरण में सिर रखें तो चित्त बड़ा प्रसन्न होगा. फिर आप महावीर को पत्थर न मारेंगे. मारेंगे ? नहीं, फिर आप महावीर के कानों में खीलें न ठोकेंगे. लेकिन महावीर आपके चरणों में सिर रख दें तो आपको कोई लाभ नहीं होता, नुकसान होता है. आपकी अकड़ और गहन हो जायेगी.

महावीर ने अपने साधुओं से कहा है कि वे गैर साधुओं को नमस्कार न करें. बड़ी अजीब-सी बात है. साधु को तो विनम्र होना चाहिए. इतना निरहंकारी होना चाहिए कि सभी के चरणों में सिर रखे. तो साधु, गैर साधु को, गृहस्थ को नमस्कार न करे, यह तो महावीर की बात अच्छी नहीं मालूम पड़ती. लेकिन प्रयोजन करुणा का है. क्योंकि साधु निमित्त बनना चाहिए कि आपका नमस्कार पैदा हो. और साधु आपको नमस्कार करे तो निमित्त तो बनेगा ही, लेकिन आपकी अस्मिता और अहंकार को और मजबूर कर देगा. कई बार दिखती है बात कुछ और, होती है कुछ और. असल में साधु का तो लक्षण यही है कि जिसका सिर अब सबके चरणों पर है. फिर भी साधु आपको नमस्कार नहीं करता है. क्योंकि निमित्त बनना चाहता है.लेकिन अगर साधु का सिर आप सबके चरणों में न हो और फिर वह आपको अपने चरणों पर झुकाने की कोशिश करे, तब वह आत्म-हत्या में लग गया है. पर फिर भी आपको चिंतित होने की कोई भी जरूरत नहीं है. क्योंकि आत्म-हत्या का प्रत्येक को हक है. अगर वह अपने नर्क का रास्ता तय कर रहा है तो उसे करने दें. लेकिन नर्क जाता हुआ आदमी भी अगर आपके स्वर्ग के इशारे के लिए निमित्त बनता हो तो अपना निमित्त लें, अपने मार्ग पर बढ़ जायें. पर मजेदार बात यह है कि हमें इसकी चिंता कम है कि हम कहां जा रहे हैं. हमें इसकी चिंता है कि दूसरा कहां जा रहा है.

नमोकार नमन का सूत्र है. यह पांच चरणों में है. समस्त जगत् में जिन्होंने भी कुछ पाया है. जिन्होंने भी कुछ जाना है, जिन्होंने भी कुछ जिया है वे जीवन के अंतरतम गुह्य रहस्य से परिचित हुए हैं; जिन्होंने मृत्यु पर विजय पाई है, जिन्होंने शरीर के पार कुछ पहचाना है उन सबके प्रति नमस्कार. समय और क्षेत्र दोनों में लोक दो अर्थ रखता है. लोक का अर्थ—विस्तार में जो होंगे स्पेस में, आकाश में, जो आज हैं वे. लेकिन जो कल थे वे भी और कल होंगे वे भी. लोक में, सर्व लोक में, सव्वसाहुणं, समस्त साधुओं को—समय के अंतराल के पीछे जो कभी हुए होंगे, भविष्य में जो होंगे और आज जो हैं वे, समय या क्षेत्र में कहीं भी जब भी कहीं कोई ज्ञान-ज्योति जगी हो, उस सबके लिए नमस्कार. इस नमस्कार के साथ ही आप तैयार होंगे. तब फिर महावीर की वाणी को समझना आसान होगा. इस नमन के बाद ही, इस झुकने के बाद ही आपकी झोली फैलेगी और महावीर की संपदा उसमें गिर सकती है.

नमन है 'रिसेप्टिविटी', ग्राहकता. जैसे ही आप नमन करते हैं वैसे ही आपका हृदय खुलता है और आप भीतर किसी को प्रवेश देने के लिए तैयार

हो जाते हैं. क्योंकि जिसके चरणों में आपने सिर रखा, उसको आप भीतर आने में बाधा न डालेंगे, निमंत्रण देंगे. जिसके प्रति आपने श्रद्धा प्रकट की है, उसके लिए आपका द्वार, आपका घर खुला हो जायगा. वह आपके घर में आपका हिस्सा होकर जी सकता है. लेकिन अगर 'ट्रस्ट' नहीं है, भरोसा नहीं है, तो नमन असंभव है. और नमन असंभव है तो समझ असंभव है. नमन के साथ ही 'अंडरस्टैंडिंग' है, नमन के साथ ही समझ का जन्म है.

ग्राहकता बनाम कृत्रिम पुनर्जन्म

इस ग्राहकता के संबंध में एक बात और आपसे कहूं. मास्को युनिवर्सिटी में १९६६ तक एक अद्‌भुत व्यक्ति था डा० वासिलिएव. वह ग्राहकता पर प्रयोग कर रहा था. माइंड की रिसेप्टिविटी, मन की ग्राहकता कितनी हो सकती है. यह करीब-करीब ऐसा हाल है जैसे कि एक बड़ा भवन हो और उसमें एक छोटा-सा छेद कर रखा हो, और उस छेद से हम बाहर के जगत् को देखते हों. यह भी हो सकता है कि भवन की सारी दीवालें गिरा दी जायें और हम खुले आकाश के नीचे समस्त रूप से ग्रहण करने वाले हो जायें. बताया गया कि इस पर वासिलिएव ने एक बहुत हैरानी का प्रयोग किया है और पहली दफा किया है. उस तरह के बहुत से प्रयोग पूरब में, विशेषकर भारत में, और सर्वाधिक विशेषकर महावीर ने किये थे. लेकिन उनका डाइमेंशन, उनका आयाम अलग था. महावीर ने जाति स्मरण के प्रयोग किये थे. प्रत्येक व्यक्ति को आगे अगर ठीक यात्रा करनी हो, तो उसे अपने पिछले जन्मों को स्मरण और याद कर लेना चाहिए. उसको पिछले जन्म याद आ जायें, स्मरण आ जायें तो आगे की यात्रा आसान हो जायगी.

लेकिन वासिलिएव ने एक और अनूठा प्रयोग किया हैं. उस प्रयोग को वे कहते हैं 'आर्टीफिशियल रीइनकारनेशन'. आर्टीफिशियल रीइनकारनेशन, कृत्रिम पुनर्जन्म, कृत्रिम पुनरुज्जीवन, यह क्या है ? वासिलिएव और उसके साथी एक व्यक्ति को बेहोश करेंगे. बीस दिन तक निरंतर सम्मोहित करके उसको गहरी बेहोशी में ले जायेंगे. और जब वह गहरी बेहोशी में आने लगेगा तो ई. जी. नाम के यंत्र पर, जिससे जांच की जा सकती है कि नींद की गहराई कितनी है, अल्फा नाम की 'वेव्स' पैदा होनी शुरू हो जाती हैं. जब व्यक्ति चेतन मन से गिरके अचेतन में चला जाता है, तो यंत्र पर जैसे कि कार्डियोग्राम पर ग्राफ बन जाता है वैसा ग्राफ ई. जी. भी बना लेता है कि अब सपना देख रहा है, अब सपने भी बंद हो गये, अब यह नींद में है, अब यह गहरी नींद में है, अब यह अतल गहराई में उतर गया है. जैसे ही कोई व्यक्ति अतल गहराई में डूब जाता है, उसे सुझाव देता था वासिलिएव.

समझ लें कि वह एक चित्रकार है, छोटा मोटा चित्रकार है, या चित्रकला का विद्यार्थी है तो वासिलिएव उसे समझायेगा कि तुम पिछले जन्म के माइकलें-जलो हो या वानगाग हो. कवि है तो वह समझायेगा कि तुम सेक्सपियर हो या कोई और हो. और तीस दिन तक निरंतर गहरी अल्फा वेव्स की हालत में उसको सुझाव दिया जायेगा कि वह कोई और है पिछले जन्म का. तीस दिन में उसका चित्त इसको ग्रहण कर लेगा.

तीस दिन के बाद बड़ी हैरानी के अनुभव हुए कि वह व्यक्ति जो साधारण-सा चित्रकार था, जब उसके भीतर भरोसा हो गया कि माइकलें-जलो हूं, तो तत्काल वह विशेष चित्रकार हो गया. अगर वह साधारण सा तुकबंद था, और जब उसे भरोसा हो गया कि मैं शेक्सपियर हूं तो शेक्सपियर की हैसियत की कविताएं उस व्यक्ति से पैदा होने लगीं. आखिर हुआ क्या ? वासिलिएव तो कहता है, यह आर्टीफिशियल रीइनकारनेशन है. वह कहता है कि हमारा चित्त तो बहुत बड़ी चीज है. छोटी-सी खिड़की खुली है, इतने से हमने अपने को समझ रखा है कि हम यह हैं, क्योंकि उतनी ही खुली है. अगर हमें भरोसा दिया जाये कि हम और बड़े हैं तो खिड़की बड़ी हो जाती है. हमारी चेतना उतना काम करने लगती है.

वासिलिएव का कहना है कि आने वाले भविष्य में हम जीनियस निर्मित कर सकेंगे. कोई कारण नहीं है कि जीनियस पैदा ही हो. सच तो यह है कि वासिलिएव के अनुसार सौ में से कम से कम नब्बे बच्चे प्रतिभा की, जीनियस की क्षमता लेकर पैदा होते हैं, हम उनकी खिड़की छोटी करते हैं. मां-बाप, स्कूल, शिक्षक सब मिल-जुलकर उनकी खिड़की छोटी करते जाते हैं. बीस पच्चीस साल तक हम एक साधारण आदमी खड़ा कर देते हैं जो कि क्षमता बड़ी लेकर आया था. लेकिन हम उसका द्वार छोटा करते जाते हैं, फिर छोटा करते जाते हैं. वासिलिएव कहता है,सभी बच्चे जीनियस की तरह पैदा होते हैं. कुछ जो हमारी तरकीबों से बच जाते हैं वे जीनियस बन जाते हैं. बाकी नष्ट हो जाते हैं. पर उसका कहना है कि असली सूत्र है रिसेप्टिविटी. इतना ग्राहक हो जाना चाहिए चित्त, कि जो उसे कहा जाये, वह उसके भीतर गहनता में प्रवेश कर जाये. इस नमोकार मंत्र के साथ हम शुरू करते हैं महावीर की वाणी पर चर्चा. क्योंकि गहन होगा मार्ग, सूक्ष्म होंगी बातें. अगर आप ग्राहक हैं, नमन से भरे, श्रद्धा से भरे, तो आपकी उस अतल गहराई में बिना किसी यंत्र की सहायता के अल्फा वेव्स पैदा हो जाती हैं. आप हैरान होंगे जानकर कि गहन सम्मोहन में, गहरी निद्रा में, ध्यान में या श्रद्धा में ई०जी० की जो मशीन है, वह एक-सा ग्राफ बनाती है. श्रद्धा से भरा हुआ चित्त उसी शांति की अवस्था में होता है जिस शांति की

अवस्था में गहन ध्यान होता है. या उसी शांति की अवस्था में होता है जैसा गहन निन्द्रा में होता है. या बहुत 'रिलैक्स' की अवस्था में होता है. जिस व्यक्ति पर वासिलिएव काम करता था वह है निकोलिएव नाम का युवक, जिस पर उसने वर्षों काम किया. निकोलिएव के अंदर दो हजार मील दूर से भेजे गए विचारों को पकड़ने की क्षमता आ गई. सैकड़ों प्रयोग किए गए हैं जिनमें वह दो हजार मील दूर तक के विचारों को पकड़ पाता है. उससे जब पूछा जाता है, उसकी तरकीब क्या है ? तब वह कहता है कि मैं आधा घंटा पूर्ण 'रिलैक्स', शिथिल होकर पड़ जाता हूं और 'ऐक्टिविटी', सक्रियता छोड़ देता हूं. 'पैसिव' हो जाता हूं. पुरुष की तरह नहीं, स्त्री की तरह हो जाता हूं. कुछ भेजता नहीं, कुछ आता हो तो ले लेने को राजी हो जाता हूं. और आधा घंटे में जब 'ई० जी०' की मशीन बता देती है कि 'अल्फा वेव्स' शुरू हो गईं, तब वह दो हजार मील दूर से भेजे गए विचारों को पकड़ने में समर्थ हो जाता है. लेकिन जब तक वह इतना 'रिसेप्टिव' नहीं होता तब तक यह नहीं हो पाता.

वासिलिएव और पनडुब्बी में प्रयोग

वासिलिएव और दो कदम आगे गया है. उसने कहा—आदमी ने तो बहुत तरह से अपने को विकृत किया है. अगर आदमी में यह क्षमता है तो पशुओं में और भी बुद्धि होगी. इस सदी का अनूठे से अनूठा प्रयोग वासिलिएव ने किया कि एक मादा चूहे को, चुहिया के ऊपर रखा और उसके आठ बच्चों को, पानी के भीतर, पनडुब्बी के भीतर हजारों फीट नीचे सागर में भेजा. पनडुब्बी का इसलिए उपयोग किया कि पानी में भीतर से कोई रेडियो वेव्स बाहर नहीं आतीं, न बाहर से भीतर जाती हैं. अब तक जानी गई जितनी वेव्स वैज्ञानिकों को पता हैं जितनी तरंगें हैं वे कोई भी पानी के भीतर उतनी गहराई तक प्रवेश नहीं करतीं. एक गहराई के बाद सूर्य की किरण भी पानी में प्रवेश नहीं करती. तो उस गहराई के नीचे पनडुब्बो को भेज दिया गया. 'इलेक्ट्रोड' लगाकर 'ई० जो०' से जोड़ दिए गए कि चुहिया के मस्तिष्क में जो 'वेव्स' चलती हैं उनको नीचे रिकार्ड करें. और बड़ी अद्‌भुत बात हुई, हजारों फीट नीचे पानी के भीतर एक-एक करके उसके बच्चों को मारा गया, और एक खास-खास 'मूवमेंट' पर नोट किया गया कि जैसे ही वहां बच्चा मरता है वैसे ही यहां उसकी 'ई० जी० वेव्स' बदल जाती हैं. दुर्घटना घटित हो गई. ठीक छह घंटे में उसके बच्चे मारे गए खास-खास समय पर, नियत समय पर. उस नियत समय का ऊपर कोई पता नहीं है. देखा गया कि जिन मिनट और सेकेंड पर नीचे चुहिया के बच्चे मारे गए, उसकी मां ने अपने मस्तिष्क में उस वक्त धक्के अनुभव किये. वासिलिएव का कहना है कि जानवरों के लिए

'टेलिपैथी' सहज-सी घटना है. आदमी भूल गया है. लेकिन जानकर अभी भी 'टेलिपैथिक' जगत् में जी रहे हैं.

मंत्र का उपयोग है आपको वापस 'टेलिपैथिक' जगत् में प्रवेश कराने के लिए अगर आप अपने को छोड़ पायें हृदय से, उस गहराई से कह पायें जहां कि, जहां कि आपकी अचेतना में आपका सब कुछ डूब जाता है—सब नमो अरिहंतानम्, नमो सिद्धानम्, नमो आयरियाणम्, नमो उवज्झायाणम्, नमो लोए सव्व साहुणम्. यह भीतर उतर जाय तो आप अपने अनुभव से कह पायेंगे सव्व पावप्पणासणो : यह सब पापों का नाश करने वाला महामंत्र है.

क्षण-क्षण निकट भगवान मेरा

— 'आकुल' राजेन्द्र

कर लिया विषपान जब से हो गया मधु गान मेरा
पी रहा खुश हो ज़हर अब जान लो अरमान मेरा
बाग़ के कांटे चुनूं मैं शोख कलियाँ मुस्कराएँ
सर खिज़ाँ अपने उठा लूं चमन हो वीराँ न मेरा
आह सीने में संजोकर हरिक पल मैं मुस्कराऊँ
आह भूले से न निकले हो न घर वीरान मेरा
सुबह पीड़ा सांझ पीड़ा यामिनी पीड़ा हुई है
पीर इतनी प्रिय हुई अब हो गई वरदान मेरा
कोई ठोकर दे न पीड़ा कोई ग़म अब ना सताए
राह में कांटे बिछा दे ऐ ! जगत् एहसान तेरा
कल्पना सुख की करूँ क्या और क्या आनंद की मैं
क्योंकि परमानंद पाकर 'मैं' बचे क्या ज्ञान मेरा
इसलिए बीता हुआ कल और जो भी आयगा वह
बोध दोनों का नहीं क्षण-क्षण निकट भगवान मेरा

तथाता की प्रेरणा : एक अनुभूति

नियम संख्या ८ के अनुसार 'युकांद' के स्वत्वाधिकार संबंधी व अन्य विवरण

: फार्म ४ :

१.	प्रकाशन का स्थान	:	७६०, राइट-टाउन, जबलपुर
२.	प्रकाशन आवृत	:	मासिक
३.	मुद्रक	:	अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर
४.	प्रकाशक	:	अरविन्द कुमार
५.	संपादक	:	अरविन्द कुमार
६.	मुद्रक, प्रकाशक व संपादक की राष्ट्रीयता	:	भारतीय
७	स्वत्वाधिकारी	:	अरविन्द कुमार

मैं अरविन्द कुमार प्रमाणित करता हूं कि मेरे ज्ञान और विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

जबलपुर
दिनांक ११ मार्च, '७२.

हस्ताक्षर
अरविन्द कुमार

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

भगवान श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक

त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादक—श्री महीपाल मूल्य ५) वार्षिक

(आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहें तो उपहार में भेंट करें)

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदररोड, बम्बई–९

Phone : 327618

युक्रांद कार्यालय में उपलब्ध आचार्य रजनीश साहित्य

	साहित्य	मूल्य
१.	महावीर मेरी दृष्टि में	३० रु०
२.	जिन खोजा तिन पाइयां	२० ,,
३.	सत्य की खोज	४ ,,
४.	समाजवाद से सावधान	४ ,,
५.	क्रांति बीज	४ ,,
६.	सम्भोग से समाधि की ओर	५ ,,
७.	शांति की खोज	२ ,,
८.	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	४ ,,
९.	गहरे पानी पैठ	५ ,,
१०.	मैं कहता आंखन देखी	६ ,,
११.	मिट्टी के दिये	५ ,,
१२.	अस्वीकृति में उठा हाथ	५ ,,
१३.	सम्भावनाओं की आहट	६ ,,
१४.	प्रेम है द्वार प्रभु का	८ ,,
१५.	समुन्द समाना बुंद में	७ ,,
१६.	गीता दर्शन (पुष्प : ५)	५ ,,

[नोट : साहित्य हेतु आदेश कार्यालय : युक्रांद, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर को प्रेषित करें .]

मार्च १९७२